वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५६ अंक १ जनवरी २०१८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

शिवभाव से जीवसेवा

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जनवरी २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक १

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवश्यक सूचना

८ जनवरी, २०१८ को स्वामी विवेकानन्द और १७ फरवरी को भगवान श्रीरामकृष्ण देव की जन्म-जयन्ती के अवसर पर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर स्थित मन्दिर में विशेष-पूजा, होम और व्याख्यान होंगे ।

२६ जनवरी से ३ फरवरी, २०१८ तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती (राजेश रामायणीजी) के रामचरितमानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे ।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

'शिवभाव से जीवसेवा' – इस महान आदर्श को दर्शाता हुआ यह चित्रांकन रामकृष्ण मठ, पुणे स्थित चित्र-प्रदर्शनी का है ।

जनवरी माह के जयन्ती और त्योहार

१	कल्पतरु दिवस, स्वामी तुरीयानन्द
८	स्वामी विवेकानन्द
१४	मकर संक्रान्ति
१९	स्वामी ब्रह्मानन्द
२१	स्वामी त्रिगुणातीतानन्द
२२	सरस्वती पूजा
२४	नर्मदा जयन्ती
२६	गणतंत्र दिवस
३१	स्वामी अद्भुतानन्द

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
डॉ. सुनील कुमार वर्मा, नेहरूनगर, बिलासपुर (छ.ग.)	५०००/-
श्री ए.टी. मेहता, बोरीवली, मुम्बई (महा.)	३०,०००/-
स्वं. चौ. सोवरन सिंह, नगला मोहन, हाथरस, (उ.प्र.)	११००/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
३६९. श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	गुरुनानक गर्ल्स कॉलेज, संतपुरा, यमुना नगर (हरयाणा)
३७०. " "	डिस्ट्रीक्ट इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, भिवानी (हरयाणा)
३७१. श्री भीकुलाल अशोक चांडक, अभ्यंकर नगर,नागपुर	राजमाता जीजाबाई वाचनालय एवं ग्रंथालय, नागपुर (महा.)
३७२. श्री मोरध्वज श्रीवास्तव, वैष्णव कॉलोनी, बलोदाबाजार	गवर्नमेंट कुंजबिहारी चौबे कॉलेज, राजनांदगाँव (छ.ग.)
३७३. श्री ए.टी. मेहता बोरीवली, (पूर्व) मुम्बई (महा.)	धर्म्धेश्वरनाथ संस्कृत कॉलेज, धर्मदानी, कुशी नगर (उ.प्र.)
३७४. " "	एम.बी.एस.पी. मंडल्स आर्ट्स, कॉमर्स कॉलेज, सतारा (महा.)
३७५. " "	महाबोधि कॉलेज, नालन्दा (बिहार)
३७६. " "	ज्ञानपीठ डिग्री कॉलेज, पो. निकाशी, जि.बक्सा (असम)
३७७. " "	स्टेण्डर्ड कॉलेज, पो. कोंग्बा, जि.- इम्फाल ईस्ट (मणिपुर)
३७८. " "	गवर्नमेंट कॉलेज नयापुरा, कोटा (राजस्थान)
३७९. " "	गवर्नमेंट एम.एम. डिग्री कॉलेज, कोतमा, अनुपपुर (म.प्र.)
३८०. " "	गवर्नमेंट लालकालिंद सिंह कॉलेज, अंतागढ़, काँकेर (छ.ग.)
३८१. " "	कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कॉलेज, इलाहाबाद (उ.प्र.)
३८२. " "	श्रीगणेश दत्त मेमोरियल कॉलेज, बैली रोड, पटना (बिहार)
३८३. श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकरनगर, रायपुर	बिकली कॉलेज, धूपधारा, जिला - ग्वालपारा (असम)
३८४. स्व. कु. ललिता गवई, रायपुर (छ.ग.)	गवर्नमेंट गर्ल्स हायर सेकण्डरी स्कूल, हरदा (म.प्र.)
३८५. स्व. कुं. योगेश कुमार सिंह, नगला मोहन, हाथरस (उ.प्र.)	गवर्नमेंट कॉलेज, भैरमगढ़, जिला - बीजापुर (छ.ग.)
३८६. श्री केशव चंद्राकर, न्यू आदर्श नगर, दुर्ग (छ.ग.)	शा.शहीद कौशल यादव महाविद्यालय, गुण्डरदेही, बालोद
३८७. " "	शा. भारती उच्च.मा.विद्यालय, अर्जुन्दा, जि. बालोद,(छ.ग)

नमामि वन्द्यं विवेकानन्दम्

नमामि वन्द्यं विवेकानन्दं धराहृदयारविन्दम्।
विश्वचन्दनं निःस्वनन्दनं ओंकारनादविन्दम्।।१।।
नवधर्मधुरं भवमर्मचरं मथितमनोमकरन्दम्।
प्रेमपथकरं क्षेमशतधरं रणितब्रह्मानन्दम्।।२।।

– जो सम्पूर्ण पृथ्वी के प्रस्फुटित कमल हैं, जो विश्व के स्निग्ध चन्दन हैं, जो सबके आनन्ददायक हैं और जो प्रणव मन्त्र के सार हैं, उन युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द की मैं वन्दना करता हूँ। जो नवधर्म की धुरी हैं, भव-रहस्य के ज्ञाता और मानव-मन के मकरन्द हैं, जो प्रेमपथ प्रदर्शक, अनेकों मंगल की वर्षा करने वाले और असीम ब्रह्मानन्द को सर्वत्र ध्वनित करनेवाले हैं।

स्थिरशान्तितरं चिरभ्रान्तिहरं मर्दितद्वेषद्वन्द्वम्।
रोचनऋषिवरं मोचनतत्परं कर्तितभवभयबन्धम्।।३।।
शोकभंजनं लोकरंजनं परदोषदर्षनानन्दम्।
गुणिगणगंजनं मुनिजनखंजनं पूतपारिजातगन्धम्।।४।।

– जो स्थिर, शान्तमय, समग्र विश्व के नित्य भ्रान्तिहारक और द्वेष-द्वन्द्व के ध्वंसक हैं, जो परम रमणीय ऋषिवर हैं और सबके भव-बन्धनों को काटकर मुक्ति देने हेतु विशेष तत्पर हैं। जो शोकनाशक, लोक-आनन्द प्रदायक और परदोष-दर्शन में असक्षम हैं। जो गुणाभिमानियों को पराजित करनेवाले, मुनियों के प्रियगीत के गायक हैं और पवित्र पारिजात पुष्प के सौरभ हैं।

पुरखों की थाती

षट्पदः पुष्पमध्यस्थो यथा सारमुद्धरेत् ।
तथा सर्वेषु शास्त्रेषु सारं गृह्णन्ति पण्डिताः ।।५८१।।

– जैसे भौंरा फूलों के भीतर से उसका सार निकाल लेता है, वैसे ही विवेकवान लोग सभी शास्त्रों के भीतर से उनका सार ग्रहण कर लेते हैं ।

पिनाक-फणि-बालेन्दु-भस्म-मन्दाकिनी-युता ।
पवर्ग रचिता मूर्तिः अपवर्गं प्रदास्तु नः ।।५८२।।

– पिनाक धनुष, फणी अर्थात् सर्प, बालचन्द्र, भस्म तथा मन्दाकिनी गंगा से युक्त पवर्ग (प-फ-ब-भ-म) द्वारा रचित भगवान शंकरजी की यह मूर्ति हमें मुक्ति प्रदान करे ।

अल्पकार्यकराः सन्ति ये नरा बहुभाषिणः ।
शरत्कालीनमेघास्ते नूनं गर्जन्ति केवलम् ।।५८३।।

– जो लोग बोलते तो बहुत हैं, परन्तु उसकी तुलना में करते अति अल्प ही हैं, वे लोग जाड़ों के उन बादलों के समान हैं, जो केवल गरजकर ही चले जाते हैं ।

अशनं मे वसनं मे जाया मे बन्धुवर्गो मे ।
इति मे मे कुर्वाणं कालवृको हन्ति पुरुषाजम् ।।५८४।।

– मेरा भोजन, मेरे वस्त्र, मेरी पत्नी, मेरे मित्रगण – इस प्रकार जो लोग 'मेरा-मेरा' कहते हुए व्यस्त रहते हैं, ऐसे व्यक्ति रूपी बकरे को कालरूपी भेड़िया मार डालता है ।

विविध भजन

हे नाथ ! अब तो ऐसी दया हो

सन्त पथिकजी महाराज

हे नाथ अब तो ऐसी दया हो,
जीवन निरर्थक जाने न पाये ।
यह मन न जाने क्या-क्या दिखाये,
कुछ बन न पाया मेरे बनाये ।।

संसार में ही आसक्त रहकर,
दिन-रात अपने मतलब की कहकर ।
सुख के लिये लाखों दुख सहकर,
ये दिन अभी तक यों ही बिताये ।।

ऐसा जगा दो फिर सो न जाऊँ,
अपने को निष्काम प्रेमी बनाऊँ ।
मैं आपको चाहूँ और पाऊँ,
संसार का कुछ भय रह न जाये ।।

वह योग्यता दो सत्कर्म कर लूँ,
अपने हृदय में सद्‌भाव भर लूँ ।
नर तन है साधन भवसिन्धु तर लूँ,
ऐसा समय फिर आये न आये ।।

हे प्रभु हमें निरभिमानी बना दो,
दारिद्र्य हर लो दानी बना दो ।
आनन्दमय विज्ञानी बना दो,
मैं हूँ 'पथिक' यह आशा लगाये ।।

सीताराम सीताराम कहना चाहिये

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

जैसे रखें रामजी रहना चाहिये ।
मान अपमान सब सहना चाहिये ।।
चाहते आराम हो, तो रोज ही सुबह शाम ।
सीताराम सीताराम कहना चाहिये ।।
अनुकूल प्रतिकूल दोनों ही के मध्य में ।
सरिता समान सदा बहना चाहिये ।।
रहो सदा शान से भरोसे भगवान के ।
काल के भी डर से न डरना चाहिये ।।
देह का अध्यास छोड़ ममता से मुख मोड़ ।
हो के मुक्त महि में विचरना चाहिये ।।
रंक हो 'राजेश' हो कि देश परदेश हो ।
समता ही चित्त में उभरना चाहिये ।।

भारत माँ की सन्तान

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

विश्वविजयी सिंहसम भारत माँ की सन्तान ।
गाओ गाओ नरपति नरेन्द्र का यशगान ।।
सुप्त भारत को जगाया, देश में उत्साह छाया ।
युवकों में संचार किया, देशभक्ति का प्राण ।।
देश ही तन-मन हमारा, देश ही है धन हमारा ।
सोते-जगते सदा जप स्वाधीनता अविराम ।।
दीन-दुखियों की दशा पर, बह रहे नित नयन निर्झर ।
निशा में नहीं नींद यति को, कैसे हो जन-कल्याण ।।
देश और विदेश जाकर, भारतीय महिमा सुनाकर ।
सत्य शाश्वत संस्कृति का किया गौरव गान ।।

विश्व युवा को स्वामी विवेकानन्द जैसा आदर्श चाहिये

सम्पादकीय

आज विश्व विभिन्न प्रकार की विसंगतियों और संकटों से त्रस्त है। विश्व की महान युवाशक्ति का कुछ अंश भ्रमित होकर कुपथ पर चलकर अपनी ऊर्जा और समय का दुरुपयोग कर रहा है। प्राय: आतंकवाद, हिंसा, भ्रष्टाचार, कदाचार, अन्याय, प्रवंचना, स्वार्थपरायणता और लोभादि से परहिंसा और परद्वेष, लोक-अहित आदि की घटनाएँ युवा मन को प्रभावित करती हैं। उसके सम्मुख कोई सर्वांगपूर्ण सार्वभौमिक आदर्श नहीं मिलता, जिसके पदचिह्नों का अनुसरण कर वह सन्मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सार्थक बना सके। इसलिये युवकों को स्वामी विवेकानन्द जैसा वैश्विक आदर्श चाहिये, जो सम्पूर्ण विश्व की युवाशक्ति का मार्गदर्शन कर सके, उन्हें एक सच्चा राष्ट्रभक्त और लोकहितैषी बनने की प्रेरणा दे सके।

स्वामी विवेकानन्द जी का त्याग-तपोमय जीवन, विश्वमानवता के प्रति हार्दिक तीव्र संवेदना और विश्ववासियों को सुखी, सार्थक और पूर्णतामय जीवन की ओर अग्रसर करने की आप्राण आजीवन चेष्टा के कारण विश्व उनकी ओर आकर्षित हो रहा है। आवश्यकता है, उनके आदर्शमय जीवन और उपदेशों को आत्मसात् कर सुखी, शान्त, हिंसामुक्त विश्व का निर्माण करने की।

स्वामी विवेकानन्द ने देश, धर्म, जाति आदि से निरपेक्ष होकर महानता प्राप्ति के सूत्र प्रदान किये, जो वैश्विक शाश्वत सन्देश से अभिहित हैं – ''प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक राष्ट्र को महान बनाने के लिये तीन चीजें आवश्यक हैं – १. सदाचार की शक्ति में विश्वास २. सदाचारी बनने वाले की सहायता करना ३. ईर्ष्या और सन्देह का परित्याग।'' इसे अपनाकर कोई भी राष्ट्रवासी महानता के शिखर पर पहुँच सकता है।

स्वामीजी की देशभक्ति की कसौटी सम्पूर्ण विश्व के देशभक्तों का आदर्श हो सकती है, जिसमें स्वामीजी देशभक्तों का आह्वान करते हुये उनसे पूछते हैं – क्या तुम करोड़ों देशवासियों के दुख का हृदय से अनुभव करते हो? क्या तुम्हारे पास उनके दुख दूर करने की कोई योजना है? क्या अपने स्वजनादि के विरोधों के बाद भी तुम अपनी योजना को पूर्ण करने के लिये कटिबद्ध हो?

एक स्थान पर स्वामीजी कहते है – ''आदान-प्रदान ही संसार का नियम है। विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु, प्रेम ही जीवन है और द्वेष मृत्यु।''

स्वामीजी जीवन की सफलता हेतु पवित्रता, पुरुषार्थ और धैर्य का सार्वजनीन सूत्र प्रदान करते हैं। अभिनव सेवाधर्म की स्थापना करते हुये स्वामीजी कहते हैं – ''मैंने इतनी तपस्या करके यही सार समझा है कि हर जीव में वे ही विराजित हैं, इसके सिवा ईश्वर और कुछ भी नहीं। जीवों पर दया करनेवाला ही ईश्वर की सेवा कर रहा है। ...तुमने पढ़ा है, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव – माता-पिता को ईश्वर समझो। किन्तु मैं कहता हूँ – दरिद्रदेवो भव, मूर्खदेवो भव – गरीब, निरक्षर, मूर्ख और दुखी, इन्हें अपना ईश्वर मानो। इनकी सेवा करना ही परम धर्म समझो।''

अपने वैश्विक शाश्वत सन्देश के कारण ही स्वामी विवेकानन्द सर्वत्र व्याप्त हैं। स्वामी विवेकानन्द के ये सार्वभौमिक विश्वहितैषी आदित्यवत् प्रखर सन्देश विश्व नभ-मण्डल में सर्वत्र ध्वनित हो रहे हैं। उनके स्वर हिमालय की घाटियों में गूँजते हैं। उनके शब्द दक्षिण महासागर में कन्याकुमारी शिला पर ध्वनित हो रहे हैं। उनकी वाणी पूर्वसागर में निनादित हो रही है। विवेकानन्द के सन्देश भारत माँ के पश्चिमी छोर राजस्थान के रेगिस्तान और गुजरात के सिन्धु-तरंग में गूँजते हैं। जो विवेकानन्द गरीबों की झोपड़ियों में भिक्षा लेकर उनके अतिथि बनते हैं, वही विवेकानन्द राजा-महाराजाओं के भी वन्दनीय गुरु बनते हैं। जो विवेकानन्द पश्चिमी देशों में भारतीय संस्कृति की महिमामयी ध्वजा के रूप में लहराते रहते हैं, वही विवेकानन्द अपनी जन्मभूमि भारत में जन-जन के प्यारे बन जाते हैं। राजा स्वयं रथ खींचकर उनका स्वागत करते हैं। धनी-निर्धन, सभी उन्हें आत्मीय रूप में स्वीकार करते हैं। उन पर गर्व करते हैं।

वेदान्तवादियों में विवेकानन्द के विचार आलोड़ित होते रहते हैं। साकारवादियों में विवेकानन्द की भक्ति-सरिता की मधुर लहरियाँ प्रवाहित होती रहती हैं। दार्शनिक विवेकानन्द के भावों पर विश्लेषण और आत्ममन्थन करते हैं। त्यागी, ईश्वर-पथ के जिज्ञासु विवेकानन्द से ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग-दर्शन पाते हैं। गृहस्थ सुखमय परिवार के साथ-साथ मानव जीवन की सार्थकता, परमात्मा-प्राप्ति का सहज-पथ-प्राप्त करते हैं। समाज सेवक निष्काम भाव से समाज-सेवा करने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। राष्ट्रभक्त राष्ट्र-पुनर्निर्माण और राष्ट्रवादियों के चरित्र-निर्माण का सूत्र पाकर राष्ट्र हेतु अपने जीवन को न्यौछावर करने का दृढ़ निश्चय करते हैं। सभी लोग स्वामीजी से प्रेरणा प्राप्त कर आदर्श-समर्पित जीवन व्यतीत करने का संकल्प लेते हैं।

विनोबाजी ने कहा था, "हमारा जन्म पृथ्वी पर हुआ है, सारी पृथ्वी हमारी है, हम पृथ्वी के हैं, हम सबके हैं, हम विश्व नागरिक हैं।" स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, "जब तक सबकी मुक्ति नहीं हो जाती, तब तक मैं कार्य करता रहूँगा।" अत: आत्मतत्त्व रूप में सर्वत्र व्याप्त होकर वे जनता को प्रेरित कर रहे हैं।

जैसे वायु सर्वव्यापी होने पर भी उपयुक्त यन्त्र के द्वारा ही हम उसे गाड़ी आदि में भरकर उसका लाभ उठा सकते हैं, अग्नितत्त्व, प्रकाश सर्वव्यापी होने पर भी बल्ब के माध्यम से प्रकाश देता है, वैसे ही, स्वामी विवेकानन्द भावरूप में सब जगह हैं, सब स्तर के लोगों के लिये हैं। हम जिस स्तर पर हैं, वहीं से उनसे प्रेरणा लेकर जीवन में संजीवनी शक्ति का संचार कर सकते हैं।

देश का भविष्य वहाँ के युवा, छात्र और प्रबुद्ध नागरिक होते हैं। ये सभी स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा ले सकते हैं। स्वामीजी ने विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का संदेश दिया। आधुनिक युवाओं में विज्ञान और तकनीक के प्रति झुकाव है। छात्र स्वामीजी की एकाग्रता, दृढ़ निश्चय, परोपकारिता, सेवा, मातृ-प्रेम, सत्यज्ञान-पिपासा, निष्ठा, धैर्य, उत्साह, पवित्रता, संघर्ष इन सद्‌गुणों से शिक्षा लेकर अपने जीवन को धन्य, सार्थक, सफल बना सकते हैं। छात्र-जीवन में ज्ञानार्जन का सबसे बड़ा गुण है – माता-पिता-गुरु का आज्ञापालन, जिस पर स्वामीजी बहुत जोर देते थे। इस सम्बन्ध में वे नचिकेता जैसी श्रद्धा का उल्लेख करते थे।

देश के भविष्य का निर्माण शिक्षकों द्वारा किया जाता है। शिक्षक ही अपनी सदाचारी राष्ट्रभक्ति की शिक्षा का छात्रों में संचार कर उनमें देशभक्ति और लोकसेवा की भावना को जाग्रत करते हैं। शिक्षक ही उनमें अच्छे संस्कारों का बीजारोपण कर उन्हें सच्चरित्र और प्रबुद्ध नागरिक बनाते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी ने शिक्षा की नई परिभाषा देते हुए कहा, "शिक्षा का अर्थ है, उस पूर्णता की अभिव्यक्ति जो सभी मनुष्यों में पहले ही विद्यमान है।" शिक्षक स्वामीजी से यह प्रेरणा लेकर ऐसी शिक्षा दें, जिससे छात्रों में निहित सद्‌गुण प्रकट हों।

शिक्षकों से मैं कम-से-कम तीन स्तर की शिक्षा की अपेक्षा रखता हूँ –

१. व्यक्तिगत स्तर पर – शिक्षक यह दृष्टिकोण विकसित करें कि ये बच्चे हमारे पुत्र-पुत्री, पौत्र-पौत्री के समान हैं। हम इनके कोमल भावनाओं का ध्यान रखते हुए, बड़े प्रेम से इनके दिव्य चरित्र का निर्माण करें। ये भविष्य के भारत के, विश्व के भावी रत्न हैं।

२. राष्ट्रीय स्तर पर – शिक्षक यह सोचें कि ये बच्चे हमारे राष्ट्र की, सम्पूर्ण विश्व की धरोहर के रूप में हमें कुछ वर्षों के लिए मिले हैं। इनके सार्वभौमिक, सर्वांगीण जीवन का निर्माण करना हमारा परम कर्तव्य है। हम अपने कर्तव्य से स्खलित न हों और भविष्य के सच्चे राष्ट्रसेवक का निर्माण करें।

३. आध्यात्मिक धरातल पर – स्वामीजी कहते थे, नर-नारायण है। मानव-सेवा माधव की सेवा है। अत: हमारे सम्मुख बैठे सभी बच्चे साक्षात् बाल-भगवान रूप हैं। हमें गुरु सांदीपनी के समान इन्हें पढ़ाने का इनके स्वच्छ, पवित्र निष्कलुष आनन्दमयरूप के सान्निध्य का सौभाग्य मिला है। हम बड़े प्रेम से इनमें सत् संस्कार डालें और अपने कर्तव्यों का पालन करते हुये अपने जीवन को धन्य बनावें।

स्वामी विवेकानन्द की आर्थिक नीति, साहित्य, संगीत, कला आदि की दूरदर्शिता और चिन्तन से उन-उन क्षेत्रों के विशेषज्ञ प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं और विश्व को एक नई दिशा दे सकते हैं, एक सुखमय आनन्दमय, प्रेममय विश्व-परिवार की कल्पना को साकार कर सकते हैं।

अत: विश्व को स्वामी विवेकानन्द जैसा महान आदर्श-पुरुष चाहिये, जिनकी प्रेरणा से वह देश-जाति-वर्ण-धर्म-सम्प्रदाय की सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर वसुधैव कुटुम्बकम्, 'विश्वं भवत्येकनीडम्' की भावना का यथार्थ बोध और विस्तार कर सके। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (१३)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

मंगलवार, २ अगस्त। आज बुधवार को अमरनाथ के महोत्सव का दिन था। यात्रियों की प्रथम टोली रात के दो बजे ही शिविर से निकल पड़ी होगी! हम लोग भी पूर्णिमा की चाँदनी में चल पड़े। सँकरी घाटी में चलते-चलते सूर्योदय हो गया। यात्रा का यह भाग सुरक्षित नहीं था। लेकिन जब हम अपनी डण्डियाँ छोड़कर चढ़ाई करने लगे, तभी वास्तविक खतरा आरम्भ हुआ। एक पगडण्डी लगभग खड़े पहाड़ पर चढ़ती हुई दूसरी ओर के तृणाच्छादित भूमि पर एक सीढ़ी के रूप में उतरी थी। जहाँ-तहाँ सर्वत्र ही कमनीय कोलम्बाइन, माइकेलमास डेजी तथा जंगली गुलाब अपनी प्राप्ति के प्रयास में हमें अपने अंगों को दाँव पर लगा देने का निमंत्रण दे रहे थे। इसके बाद किसी प्रकार दूर स्थित उतराई के नीचे तक पहुँचकर हमें गुहा तक हिमनद के किनारे मीलों चलते रहना पड़ा। लक्ष्य तक पहुँचने के लगभग एक मील पूर्व बर्फ समाप्त हो गयी और वहाँ बहते जल में यात्रियों को स्नान करना था। करीब-करीब लक्ष्य तक पहुँच जाने पर भी चट्टानों पर एक खड़ी चढ़ाई बाकी थी।

स्वामीजी इस बीच थोड़े थककर पीछे रह गये थे, परन्तु मैं उनकी अस्वस्थता को भूलकर कंकड़ के ढूहों के नीचे बैठी-बैठी उनकी प्रतीक्षा करने लगी। आखिरकार वे वहाँ आ पहुँचे। मुझे आगे बढ़ने को कहकर वे स्नान करने जा रहे थे। आधे घण्टे बाद उन्होंने गुहा में प्रवेश किया। एक मुस्कान के साथ पहले उन्होंने अर्ध-वृत्ताकार पंक्ति के एक छोर से और उसके बाद दूसरे छोर से घुटनों के बल झुककर प्रणाम किया। वह स्थान इतना बड़ा था कि उसमें पूरा एक गिरजाघर ही समा जाता और गहरी छाया के बीच स्थित विशाल हिमलिंग मानो अपने सिंहासन पर स्थित था। इसी प्रकार कई मिनट बीत गये और तब वे गुहा से बाहर निकलने को मुड़े।

उनके लिए अब तो मानो स्वर्ग का द्वार ही उन्मोचित हो गया हो। उन्होंने शिवजी के चरणों का स्पर्श किया था। उन्होंने बाद में बताया कि उस समय उन्हें स्वयं को बड़ी दृढ़ता से सँभालना पड़ा था कि कहीं वे मूर्छित न हो जायँ। परन्तु उनकी शारीरिक थकान इतनी अधिक हुई थी कि बाद में एक डॉ-क्टर ने कहा था कि उस समय उनकी हृदयगति बन्द हो जाने की सम्भावना थी, परन्तु उसकी जगह उसका आकार सदा के लिए वर्धित हो गया था। बड़े विचित्र ढंग से श्रीरामकृष्ण की यह वाणी पूर्ण होते होते रह गयी थी, "जब वह जान लेगा कि वह कौन तथा क्या है, तो वह शरीर को त्याग देगा।"

आधे घण्टे बाद सोते के पास एक चट्टान पर बैठकर उन सहृदय नागा संन्यासी तथा मेरे साथ बैठकर जलपान करते हुए उन्होंने कहा, "मुझे बड़ा ही आनन्द मिला! लगा कि हिमलिंग साक्षात् शिव ही हैं। और वहाँ कोई लोभी पुरोहित, किसी भी तरह का व्यवसाय या कुछ भी गलत न था। वहाँ केवल एक निरवच्छिन्न पूजा का ही भाव था, अन्य किसी भी तीर्थस्थान में मुझे इतना आनन्द नहीं आया!"

बाद में वे प्राय: ही अपनी उस चित्तविह्वलकारी अनुभूति के बारे में बताते हुए कहते कि कैसे उन्हें लगा मानो वह उन्हें अपने घूर्णावर्त में खींच लेगा। वे उस तुषारलिंग के साथ जुड़े कवित्व पर चर्चा करते। उन्होंने ही हमें बताया कि किस प्रकार मेष-पालकों के एक दल ने इस स्थान का पहली बार आविष्कार किया था। ग्रीष्म काल के दौरान एक दिन वे अपनी खोयी हुई भेड़ों की तलाश में काफी दूर भटकते हुए इस गुफा में आ पहुँचे और स्वयं को चिर-तुषाररूपी साक्षात् महादेव के सम्मुखीन पाया। वे सर्वदा यह भी कहा करते थे कि अमरनाथ ने वहाँ उन्हें इच्छामृत्यु अर्थात् अपनी स्वीकृति के बिना न मरने का वर दिया था। और उन्होंने मुझसे कहा, "तुम अभी नहीं समझोगी। परन्तु तुमने तीर्थयात्रा की है और यह क्रमश: फलित होगी। कारण होने पर कार्य अवश्यम्भावी है। बाद में तुम और अच्छी तरह समझोगी। इसका प्रभाव अवश्य होगा।"[१]

१. इस अंश में स्वामीजी ने निवेदिता को सांत्वना देते हुए जो बातें कही हैं, उसका पूरा तात्पर्य 'वांडरिंग्स...' या 'द मास्टर...' ग्रन्थ से ही समझ पाना सम्भव नहीं है। हम पहले जिस पत्र का उल्लेख कर आये हैं, उसी में इस उक्ति की पृष्ठभूमि निहित है। हमने देखा कि निवेदिता स्वामीजी के दिव्य-दर्शन पर आनन्दित हुई थीं, तथापि अपने पाश्चात्य योद्धा स्वभाव

* * *

पुन: पत्रों से उद्धरण दिये जा रहे हैं –

२ सितम्बर १८९८, नेल हेमण्ड को –

(श्रीनगर से) ... वस्तुत: मैं स्वामीजी के विषय में और भी बातें लिखने के लिये बैठी हूँ, परन्तु कैसे आरम्भ करूँ यह समझ नहीं पा रही हूँ। कल वे हम लोगों को छोड़कर चले गये; सम्भव है कि अब हम लाहौर में उन्हें दुबारा देख सकें; या फिर कलकत्ते लौटने के पूर्व उनसे भेंट नहीं भी हो सकती है।

पखवारे भर पूर्व वे अकेले चले गये थे; और करीब आठ दिन पहले – दिव्य भाव में रूपान्तरित तथा प्रेरित होकर लौट आये।

इस विषय में मैं तुम्हें कुछ कह नहीं सकती। वह महान् वस्तु शब्दों के परे है। मेरी लेखनी को फुसफुसाहट की ध्वनि में बातें करना सीखना होगा।

वे सहज भाव से एक शिशु की भाँति 'जगदम्बा' की बातें कहते हैं, परन्तु उनकी अन्तरात्मा तथा वाणी ईश्वर की भाषा में बोलती हैं। उनकी उपस्थिति से होनेवाली गम्भीरता तथा खुशमिजाजी की मिली-जुली अभिव्यक्ति ने मुझे दूर के कोने तक जाने को बाध्य कर दिया है, ताकि मैं निरन्तर नीरवता के साथ पूजा कर सकूँ। ''हमने तारों को जन्म लेते देखा है, हमें गूढ़ तत्त्व का एक तात्पर्य मिला है।'' यह उस ईश्वरद्रष्टा व्यक्ति के सान्निध्य का फल है, जिनके नेत्र अब भी ईश्वर के रूप से परिपूर्ण हैं।

इस समय उनके समक्ष ''जनहित'' की बातें करना भी असह्य है। ''केवल माँ'' सब कुछ करती हैं। लौटकर वे बोले – ''देशप्रेम एक भ्रान्ति है। हर चीज एक भ्रान्ति है।'' ''सब कुछ माँ हैं। सभी मनुष्य अच्छे हैं। केवल हम सबके पास पहुँच नहीं सकते। ... अब मैं कभी शिक्षा नहीं दूँगा। मैं शिक्षा देनेवाला भला कौन होता हूँ?''

मौन, तपस्या और निवृत्ति ही अब उनके लिये जीवन के मूल सूत्र हैं; और यह निवृत्ति इतनी पवित्र है कि इसका स्पर्श करने की कल्पना तक नहीं की जा सकती। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि मानो ''जगदम्बा'' के बोध से रहित बिताया गया प्रत्येक क्षण पूरी तौर से व्यर्थ चला जा रहा है। ...

जब मैं पीछे मुड़कर इस अद्‌भुत ग्रीष्मकाल की ओर देखती हूँ, तो विस्मयपूर्वक सोचती हूँ – मुझे भला कैसे भाव के इस उच्च स्तर तक पहुँचने का सौभाग्य मिला। इन महीनों के दौरान हम महान् धार्मिक आदर्शों की आलोकधारा के बीच निवास तथा जीवनयापन करती रही हैं; सामान्य मनुष्यों की अपेक्षा ईश्वर ही हमारे लिये अधिक वास्तविक प्रतीत हुए हैं। कल सुबह के उन अन्तिम कुछ घण्टों के दौरान, जब वे जगदम्बा के लिये भजन गा रहे थे और हम लोगों के साथ बातें कर रहे थे, तब तो हम लोग साँस रोके पूरी तौर से स्तब्ध बनी रहीं।

इस समय वे केवल प्रेम से परिपूर्ण हैं। अब तो उनके शब्दों में जरा भी कटुता का भाव नहीं है – अत्याचारी या अन्यायी के लिये भी नहीं; अब सब कुछ शान्ति, आत्मत्याग और हर्षातिरेक मात्र है। ''स्वामीजी अब नहीं रहे, वे चिरकाल के लिये विदा ले चुके हैं'' – ये ही मेरे सुने हुए उनके अन्तिम शब्द थे।

(१३.१०.१८९८) जब से उन्होंने 'काली माता' कविता लिखी, तभी से वे अधिकाधिक अन्तर्मुखी होते जा रहे थे; और आखिरकार किसी को पता लगे बिना ही वे चुपचाप उस स्थान से क्षीरभवानी नामक पवित्र कुण्ड पर रहने चले गये। वहाँ उन्होंने आठ दिन निवास किया। वह इतना दिव्य विषय है कि उस पर कुछ लिख पाना कठिन है। वहाँ उन्हें आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही तरह की अद्‌भुत अनुभूतियाँ हुई होंगी – क्योंकि जब एक दिन दोपहर में वे आये, तो जगदम्बा से बातें करते हुए उनके चेहरे से आभा निकल रही थी और बोले कि वे तत्काल कलकत्ते लौट जायेंगे। उसके बाद से हमारी उनसे भेंट नहीं हुई। वे एकाकी रहे। वे स्वयं ही बोले, ''मैं माँ की गोद में शिशु के समान हूँ।'' अब मैं किस प्रकार तुम्हारे लिये अनिर्वचनीय विषय का वर्णन करूँ ! परन्तु तुम उपस्थित रहने पर जो कुछ देखती, मैं वही सब तुम्हें सूचित करना चाहती हूँ। मैं जानती हूँ, इन्हें तुम केवल समाचार के रूप में ही नहीं लोगी, बल्कि व्यक्तिगत रूप से अत्यन्त पवित्र मानकर ग्रहण करोगी। **(क्रमशः)**

के कारण अपने गुरुदेव से उन अनुभूतियों में हिस्सा पाने का दावा किया था। स्वामीजी के लिये उनके दावे को पूरा करना सम्भव नहीं हो सका था। सम्भवत: निवेदिता के पुराने संस्कार इस अनुभूति में बाधक थे। परन्तु 'इस तीर्थयात्रा का फल तुम बाद में समझोगी' – स्वामीजी की यह उक्ति भविष्य में सार्थक हुई थी। स्वामीजी निवेदिता को शिव के समक्ष उत्सर्ग करने हेतु अमरनाथ ले गये थे। हमें निवेदिता का परवर्ती जीवन शिवमय दीख पड़ता है। केवल इतना ही नहीं, हिमालय में शिव के चरणों में उत्सर्गीकृत निवेदिता ने हिमालय में ही हिमाच्छादित शिखरों की ओर दृष्टि लगाये हुए देहत्याग भी किया था। सम्भव है कि यह काकतालीय न्याय हुआ हो, परन्तु इस श्रेणी के व्यक्तियों के जीवन की घटनाएँ नियमित रूप से ही काकतालीय न्याय ही घटती दिखाई देती हैं।

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (३/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

इस तरह ये दो सांकेतिक तत्त्व हैं। वही सूत्र यहाँ पर भी है। भगवान कहते हैं, देह साधन धाम है। इसका अभिप्राय है कि अगर शरीर से हम सही शिक्षा लें, तो शरीर स्वयं उपदेश देने वाला है। कैसा परिवर्तनशील शरीर मिला हुआ है! ईश्वर चाहते, तो स्वर्ग के देवताओं के समान शरीर दे देते। स्वर्ग के देवता कभी बूढ़े नहीं होते। पर व्यक्ति को उसने ऐसा शरीर दे दिया, जो परिवर्तनशील है, जिसमें रोग है, जिसमें मृत्यु है। क्यों दिया है ऐसा शरीर ईश्वर ने? मनुष्य को साधना की दिशा में प्रेरित करने के लिए ही यह शरीर ईश्वर के द्वारा दिया गया है। इसका अभिप्राय है कि जब यह जान लें कि जो वस्तु हमारे पास है, वह सदा हमारे पास रहने वाली नहीं है। बुद्धिमान व्यक्ति कौन है? जो यह समझ ले कि जो वस्तु आज है और कल नहीं रहेगी। उसका जितना अधिक-से-अधिक लाभ ले सकें, सदुपयोग कर सकें, वह हम करें। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक शरीर गुरु के रूप में व्यक्ति को सब कुछ तो बता रहा है। किस तरह से बालक का जन्म माता के माध्यम से होते हुए भी शरीर का निर्माण नौ महीने तक माता के गर्भ में होता है। ईश्वर चमत्कार के द्वारा भी जन्म दे सकते थे, किन्तु ऐसा नहीं किया। दूसरी बात है कि जन्म लेने के बाद तो माता उसका ध्यान रख सकती है, पर गर्भ के काल में कौन ध्यान रखता है?

इसीलिये वह संकेत आता है। परीक्षित जिस समय राजसभा में बालक के रूप में आए, तो सभा में बैठे हुए प्रत्येक व्यक्ति को वे ध्यान से देखने लगे। इसीलिये तो उनका नाम परीक्षित पड़ा कि वह परीक्षा ले रहा है। लोगों ने आश्चर्य से पूछा, तुम किसको ढूँढ़ रहे हो? वे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब भगवान कृष्ण के सामने गये, तब रुक गये। क्या हुआ? परीक्षित ने कहा, जब मैं माँ के गर्भ में था, अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जलने की स्थिति में था, तब मैंने देखा कि एक श्यामवर्ण का तेजोमय पुरुष चक्र लेकर मेरी रक्षा कर रहा था। माँ मेरी रक्षा नहीं कर सकती थी। मैं ढूँढ़ रहा था कि वह कहाँ है। अब वह पहचान में आ गया।

इसका अर्थ है कि यह केवल परीक्षित की कथा नहीं है। सारे जीव परीक्षित ही तो हैं। बस अन्तर यह है कि परीक्षित ढूँढ़ रहे हैं कि गर्भ में हमारी रक्षा करने वाला कौन था और हम लोग नहीं ढूँढ़ते, नहीं खोजते। फिर वह क्रम, जिस तरह से शरीर का जन्म होता है, जिस तरह से उस बालक की आवश्यकता की पूर्ति जिस माध्यम से प्रभु के द्वारा होती है, वह प्रत्येक कार्य तो व्यक्ति को ईश्वर की ओर इंगित कर रहा है। इसीलिये जब जन्म दिया गया, तो भक्तों ने कहा, बालक के मुँह में दाँत नहीं हैं, तो दूध दो। इसका अभिप्राय है कि जब व्यक्ति के जीवन का श्रीगणेश होता है, तो वह कृपा से होता है। ईश्वर की कृपा से ही गर्भ में बालक सुरक्षित है और ईश्वर की कृपा से ही जन्म लेने के बाद बालक का जो आहार है, वह उसे प्राप्त होता है। एक ओर माँ का कष्ट, पिता की सुरक्षा है, दूसरी ओर इसके पीछे प्रेरक रूप में ईश्वर हैं। अगर हम अपनी बाल्यावस्था पर और इसके भी पहले गर्भ में हमारी अवस्था पर ध्यान दें, तो हमारे हृदय में, अन्तःकरण में भक्ति हुए बिना रह ही नहीं सकती। विनयपत्रिका में गोस्वामीजी यही कहते हैं –

गरभबास दस मास पालि पितु-मातु-रूप हित कीन्हों। (१७१.२)

प्रभु, पहले आपने दस मास तक गर्भ में मेरी रक्षा की। बाद में भी माता-पिता में वात्सल्य दिया तो किसने दिया? आप ही तो उनके हृदय में यह प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। इस तरह से यह शरीर यह सब शिक्षा दे रहा है। बालक का इस तरह से सृजन करके भगवान उसे संसार में भेज देते हैं, लेकिन उसे कोई भाषा देकर नहीं भेजते। मानो साधन

का अभिप्राय क्या है? ईश्वर एक ओर तो कृपा कर रहा है, पर भाषा देकर क्यों नहीं भेजता? गर्भ से ही बालक भाषा सीख कर आवे और वही भाषा बोलने लगे। ईश्वर कहता है, मैंने जितना कार्य करना था, कर दिया, अब भाषा तुम दो, यही साधना है। भाषा माने? जो माता-पिता बोलेंगे, बालक वही तो सीखेगा। हम यह समझ लें कि बालक जो बोल रहा है, वह आपकी दी हुई भाषा है। केवल हिन्दी-संस्कृत के विषय में ही नहीं, अगर वह गाली-गलौच भी करता है, तो वह भाषा उसने कहाँ से सीखी होगी? कहाँ से आ गई होगी उसके जीवन में? इसका अर्थ यह होता है कि ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के बाद माता-पिता को बालक के सामने स्वयं सजग रहना है।

कभी-कभी बड़ी अनोखी बात होती है। एक दम्पती को एक पुत्र और एक पुत्री थी। उन्होंने कहा, ये दोनों जब देखो, तब लड़ते ही रहते हैं। इनको कुछ शिक्षा दीजिए कि ये न लड़ें । मुझे पता था कि वे पति-पत्नी नित्य लड़ते ही रहते थे। मैंने कहा, आप लोग दिन-रात इतनी शिक्षा देते रहते हैं, मेरे एक घंटे के भाषण में क्या बदलने वाला है? इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपने आचरण, अपनी वाणी के द्वारा सिखाता रहता है। ईश्वर ने जब बाल्यावस्था में मस्तिष्क की शक्ति दी, स्मरण शक्ति की तीव्रता दी, वह यह संकेत करता है कि हम अच्छी-से अच्छी बातों का स्मरण करें। जब युवावस्था में वह कर्म की शक्ति देता है, तो उसका अभिप्राय है कि हम पुरुषार्थ करें, कर्म करें, यह जो स्वस्थ शरीर मिला है, उसका सदुपयोग करें। उसके बाद फिर वृद्धावस्था भी ला देता है कि अब तो कर्म की क्षमता धीरे-धीरे कम होगी। अगर उसने जीवन को सही ढंग से व्यतीत किया है, सही समझा है, तो कर्म की क्षमता कम होने पर भी उसके अनुभव के कारण विचार की क्षमता बढ़ेगी। विचार की क्षमता बढ़ेगी, तो वृद्धावस्था को समझेगा। कर्म भी मैंने किया, सब कुछ मैंने किया, पर अब विचार करना है। जैसे एक दुकानदार दिन भर दुकान में चीजें बेचता है, रात्रि हो गई, ग्राहक चले गये, पर उसका काम समाप्त थोड़े ही हो जाता है। तब वह पूरा खाता मिलाकर देखता है कि आज दिनभर बिक्री तो हुई, पर लाभ कितना हुआ? वृद्धावस्था माने? सायंकाल हो रहा है, अब जरा खाता खोलकर देखें कि जीवन भर जो व्यापार किया, उसमें कुछ लाभ भी हुआ कि घाटा-ही-घाटा हुआ? दिनभर बिक्री हुई, शाम को हिसाब लगाकर देखा, दिनभर परिश्रम-ही-परिश्रम हुआ, लाभ कुछ नहीं हुआ। वृद्धावस्था तो व्यक्ति को चिन्तन का संदेश देता है। मनु दशरथ कैसे बने? राम को पाने का संकल्प उनके मन में कैसे आया? गोस्वामीजी ने लिखा, मनु जब वृद्ध हो गये, तो सोचने लगे –

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु।। १/१४२

हमने सब कुछ पाया जीवन में पर सबसे बड़ी वस्तु, ईश्वर तो हमें नहीं मिला। तब यह विचार उनको ईश्वर की दिशा में ले जाता है। यही मानो साधन धाम है। कैसा सुन्दर शरीर है! इसमें विचार है, कर्म है! कैसी इसकी रचना है! अगर इस पर पूरी तरह कोई दृष्टि डाले, तो उसे स्पष्ट लगेगा कि ईश्वर ने शरीर साधना के लिये दिया है। अब वह बात और है कि कवि केशवदास की तरह कोई दुखी हो जाय। ये बेचारे बड़े कवि थे। इनकी अवस्था कुछ अधिक होने पर सिर के कुछ बाल सफेद हो गये। कोई युवती मिली तो बोली, बाबा प्रणाम, कैसे हैं? तो आशीर्वाद तो दे दिया, पर दुखी मन से लौट आए और वृद्धावस्था को कोसने लगे। कहने लगे –

केसव केसनि अस करी अरिहूँ जस न कराय।
चंद्रबदन मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाय।।

केशवदासजी ने कहा कि इन बालों ने तो वह कर दिया, जो शत्रु भी नहीं करता। क्या हानि कर दी? 'बाबा' शब्द कितने सम्मान का शब्द है। हम किसी महात्मा को 'बाबाजी' कहते हैं। पर भोगी को लगता है कि यह तो सर्वनाश हो गया। वह तो भोग की लालसा के कारण वृद्धावस्था की कल्पना से ही आतंकित हो जाता है। यही वृत्ति बेचारे प्रतापभानु को दशमुख बना देती है। एक दशरथ बन गया और एक दशमुख बन गया। दोनों धर्मात्मा थे। मनु धर्मात्मा थे, वे दशरथ बन गये। प्रतापभानु धर्मात्मा था, वह दशमुख बन गया। क्यों? मनु वृद्ध हो गये, तो उन्होंने सोचा कि भगवान कैसे मिलें। प्रतापभानु वृद्ध नहीं हुआ था, उसके पहले ही वन में गया। दोनों वन में ही गये। दोनों को मुनि ही मिले। प्रतापभानु को कपट मुनि मिले और मनु को उच्चकोटि के संत मिले। प्रतापभानु को कपट मुनि इसलिये मिले कि जो माँग वह हृदय में लेकर गया था, वह तो किसी कपट मुनि से ही पूरी हो सकती थी, किसी संत से पूरी

नहीं हो सकती थी। क्योकि प्रतापभानु से जब कपट मुनि ने पूछा, क्या चाहते हो? तो सबसे अधिक चिन्ता उसे बुढ़ापा की थी । उसने सोचा – मैंने युवावस्था में संसार को हरा दिया, मैं बूढ़ा हो जाऊँगा, तब तो शायद इतनी शक्ति नहीं रह जायेगी। मैं युद्ध में शत्रु को नहीं हरा पाऊँगा। ऐसा न हो कि जिन्हें मैंने हराया है, वे फिर से मुझ पर आक्रमण करके मुझे जीत लें और अपना राज्य वापस ले लें। ऐसा न हो कि वृद्धावस्था में लड़ते हुए मैं मारा जाऊँ। इसीलिये वह माँग करता है –

जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ।। १/१६४

मैं बूढ़ा न होऊँ, मैं मरूँ नहीं, कभी हारूँ नहीं और सौ कल्प तक मेरा राज्य रहे। कपट मुनि मन-ही-मन हँसा कि मैं तो समझता था कि मैं गरीब हूँ, मेरा राज्य छिन गया है, किन्तु इसकी तो इतनी माँगें हैं। इतना दरिद्र है कि इसकी माँगें कैसे पूरी होंगी। इसीलिये वह रावण, दस मुख वाला भोगवादी बन जाता है। भोग चाहिये, सत्ता चाहिये, राज्य चाहिये। उसे वह मिल गया। मनु ने सोचा कि नहीं, शरीर का उद्देश्य यह नहीं हो सकता। इसलिये भगवान श्रीराम अयोध्यावासियों से कहते हैं – मित्रो! ईश्वर ने यह जो शरीर तुम्हें दिया है, वह साधना का धाम है। इसका सांकेतिक अर्थ क्या हुआ? वह यह है कि धाम जो होता है, वह तो आपका साधन ही होता है। धाम में आप रहेंगे या जो रहेगा, उसी के लिये तो धाम है। अगर यह शरीर साधना का धाम है, तो चुनाव यही करना है कि साधना के धाम में हम किसको स्थान देते हैं? अगर उस साधना के धाम में ईश्वर प्रतिस्थापित है, तो वह धाम धन्य हो जाएगा। गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में प्रभु से कहा –

मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा।
मैं एक, अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा।। (१२५)

किराए पर मकान देना, आज कल लोग बड़ा संकट का कारण समझते हैं। अब यह बाहर वाले मकान का तो जो भी हो, पर हमलोगों का हृदय का मकान, तो किराये पर ही उठा रहता है। किस समय किसको हृदय में किराये से बसा दिया जायगा, और कितने दिन के लिये, इसका कोई ठिकाना नहीं है। गोस्वामीजी प्रभु से कहते हैं, अच्छा हुआ प्रभु आ गये। भगवान ने कहा, तो क्या हुआ? भक्त ने कहा – महाराज, यह धाम तो आपका है, इस धाम का और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं उन चोरों को निकाल नहीं पा रहा हूँ –

कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा।
चिंता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा। (१२५)

ये तस्कर लोग आपका धाम लूट रहे हैं। भगवान बोले, चिन्ता तो मुझे होनी चाहिये। बोले, महाराज, चिन्ता इसलिये है कि ईश्वर के धाम पर काम, क्रोध, लोभ ने अधिकार कर लिया, यह कितना बड़ा कलंक लग जाएगा! इस पर कुछ दृष्टि तो डालिए। इसलिये भक्त लोग भगवान से कहा करते हैं कि आप हृदय में आकर निवास कीजिए।

जब विभीषण और भगवान राम का मिलन हुआ था, तो प्रभु ने पूछा – विभीषण, तुम कुशल से तो हो? वे एक क्षण के लिये मौन हुए। मौन क्यों हो गये? उन्होंने कहा – महाराज, यह प्रश्न अतीत के लिये है या वर्तमान के लिये? अगर भूतकाल के लिये है, तो लंका में रहकर कुशलता का प्रश्न कहाँ है? जब आपके सामने आ गया, तो भी कुशलता का प्रश्न कहाँ है? उस समय जो वाक्य उन्होंने कहा, वह महत्त्वपूर्ण है। **(क्रमशः)**

तुममें रमा रहे मन

सत्येन्दु शर्मा
सहा-प्राध्यापक, संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर

दिन भर जो भी बना, किया सब कर्म तुम्हारे भगवन् ।
हे स्वामी करता हूँ, सब कर्मों के फल अर्पण ।।
कर्म तुम्हारे फल भी तेरे, कुछ भी नहीं हमारा ।
तेरी गोद शरण है केवल, तू ही एक सहारा ।।
प्रातः जगकर तुम्हें नमन कर सेवा में आऊँगा ।
तन से कर्म करूँगा, मन से गुण तेरे गाऊँगा ।।
एक ही विनती तुमसे स्वामी इतना रखना ध्यान ।
मेरे जीवन लक्ष्य तुम्हीं हो, बना रहे यह ज्ञान ।।
शयन-समाधि सुलभ करो, विश्राम करे यह तन ।
पर निद्रा में सपने में भी तुममें रमा रहे मन ।।

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशति हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

श्रीरामकृष्ण के संस्मरण

दक्षिणेश्वर में प्रथम भेंट

१८८३-८४ ई. के गर्मी का मौसम था । लॉर्ड रिपन के शासनकाल में और कलकत्ते की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के पूर्व मैं पहली बार दक्षिणेश्वर गया । उन दिनों मेरी आयु १५-१६ साल रही होगी । परन्तु तब भी मुझे दिगम्बर होने में लज्जा का बोध नहीं होता था ।

जिस दिन मैं पहली बार श्रीरामकृष्ण से मिलने गया, उस दिन उन्होंने बड़े स्नेहपूर्वक अपने पास बैठा लिया । उनका पहला प्रश्न था, "क्या तूने पहले कहीं मुझे देखा है?" मैंने उत्तर दिया, "हाँ, एक बार खूब बचपन में आपको दीननाथ बोस[१] के मकान में देखा था ।"

स्वामी अद्वैतानन्द (गोपाल दादा) भी श्रीरामकृष्ण के पास ही थे । उन्हें सम्बोधित करके ठाकुर हँसते हुए बोले, "अजी, सुनो सुनो ! यह कहता है कि खूब बचपन में आपको देखा था । वाह, इसका भी बचपन !"

तीसरे पहर ठाकुर ने मुझसे कहा कि मैं काली और विष्णु के मन्दिरों में प्रणाम करने के बाद पंचवटी में जाऊँ । संध्या होने के बाद मैं ठाकुर के कमरे में लौट आया । उसी समय कालीबाड़ी के दोनों नहबतखानों में संगीत बजने लगा और आरती के घण्टे की ध्वनि से विशाल उद्यान-मन्दिर गूँजने लगा ।

इसके बाद मैंने ठाकुर के कमरे में प्रवेश करते समय देखा कि कमरे में अन्धेरा करके उसमें धूप-धूना दिया गया है और उसी के बीच ठाकुर बैठे हुए थे, परन्तु दिखाई नहीं दे रहे थे । उनकी बाह्य चेतना चली गयी थी ।

उनके कहने पर उस रात मैं दक्षिणेश्वर में ही रह गया ।

अगले दिन सुबह जब मैं दक्षिणेश्वर से कलकत्ते लौटने को तैयार हुआ, तो हँसते हुए उन्होंने कहा, "शनिवार को फिर आना ।"

उन दिनों गोपाल दादा ही उनके पास रहा करते थे ।

आवागमन

इसके कुछ दिनों बाद शनिवार को फिर उनके पास जाने पर उन्होंने उस दिन भी मुझे लौटने नहीं दिया ।

संध्या के बाद आरती हो जाने पर उन्होंने पश्चिमी बरामदे में मुझे एक चटाई देकर कहा, "बिछाओ ।" इसके बाद एक तकिया लाकर वे उस चटाई पर लेट गये । उन्होंने मुझे सुखासन में बैठाकर ध्यान कराया । बोले, "बिल्कुल झुककर नहीं बैठना चाहिये और खूब तनकर बैठना भी ठीक नहीं है । भात परोस दिये जाने पर, तू उसे चाहे जैसे भी खा, तेरा पेट तो भरेगा ही ।" (इसी दिन उन्होंने मेरी जिह्वा पर लिखकर मुझे दीक्षा भी दी ।) उसके बाद वे लेट गये और मेरी गोद में पाँव रखकर उसे दबाने को कहा । उन दिनों मैं थोड़ी-बहुत कुश्ती लड़ा करता था । पाँव को थोड़ा जोर से दबाते ही वे बोल उठे, "अरे, यह क्या करता है? ऐसे

---

१. दीन बोस – बाबू दीननाथ बोस के छोटे भाई कालीनाथ बोस (पुलिस के उच्च अधिकारी) केशवचन्द्र सेन के भक्त थे । केशव बाबू ही श्रीरामकृष्ण को कालीबाबू के घर ले आये थे । कालीबाबू ने अपने घर में एक छोटे-से उत्सव का आयोजन किया था । वहीं से दीननाथ बोस श्रीरामकृष्ण को अपने घर ले गये । उनके साथ हृदयराम, कुछ अन्य भक्तगण तथा अनेक ब्राह्मसमाजी लोग भी थे ।

श्रीरामकृष्ण जब दीननाथ के घर में आये थे, उन दिनों वे बड़े दुबले-पतले थे और दो-चार बातें बोलते ही भावसमाधि में डूब जाते थे । जब जिन नाम या जिस भाव के द्वारा समाधि लगती, तब ॐकार के साथ उसी नाम को सुनाने पर उनका मन नीचे उतर आता । नाड़ीज्ञान के विशेषज्ञों ने उनकी समाधि के समय उनकी नाड़ी देखकर तथा उनके अधखुले नेत्रों की पलक गिरती है या नहीं, इसकी परीक्षा करने के बाद देखा था कि उनकी नाड़ी बन्द है, पलकें नहीं गिरतीं और शरीर काष्ठवत् हो गया है ।

उसी दिन वे एक भजन गाते हुए समाधि में डूब गये थे – (भावार्थ) "हे माँ काली, एक बार अपनी तलवार को रखकर हाथों में बाँसुरी लिये नाचकर दिखाओ।" इसके फलस्वरूप कुछ दिनों तक पूरे मुहल्ले में (सभी खयाल-ठुमरियों को छोड़) इसी भजन को गाने से लोगों के मन में एक नये भाव का उदय होता । सभी के मुख से यही "एक बार नाचो, माँ काली" भजन सुनाई देता था ।

तो तू मेरे पाँवों का कचूमर ही निकाल देगा । जरा धीरे-धीरे दबा ।'' मैंने देखा कि उनका शरीर बड़ा ही कोमल है ! मानो उनकी हड्डियों के ऊपर मक्खन का लेप किया हुआ हो । मैंने थोड़ा संकुचित होकर डरते-डरते पूछा, ''तो फिर मैं कैसे दबाऊँ?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''ऐसे ही धीरे-धीरे हाथ फेर दे ।'' तब मैंने वैसा ही किया । वे बोले, ''निरंजन (स्वामी निरंजनानन्द) ने भी पहली बार ऐसे ही (जोर से) दबाया था ।''

मैं प्राय: ही अपराह्न में उनके पास जाकर, वहाँ रात्रिवास करके अगले दिन सुबह लौट आता । उन दिनों मैं प्रतिदिन एक बार मिट्टी के बरतन में स्वयं हविष्यान्न (घी-भात) पकाकर भोजन किया करता था । बहुत हठ करके भी कभी कोई मुझे किसी ब्राह्मण के घर में नारायण-शिला (विष्णु) को भोग दिया हुआ प्रसाद तक नहीं खिला सकता था । वहाँ मुझे भय होता कि कहीं मुझे कालीबाड़ी में न खाना पड़ जाय और उनके पास रहकर हविष्यान्न पकाकर खाने का भी साहस नहीं होता, अत: मैं सबेरे ही कालीबाड़ी से घर लौट आता । तब मैं दिन में चार बार गंगास्नान करता, सिर के केश बिना तेल के बड़े रूखे-सूखे दिखते थे और हरीतकी चबाकर मैं मुखशुद्धि किया करता था । मुखशुद्धि में थोड़ा अति हो जाता था । हरि महाराज (तुरीयानन्द) के मुख से ये दो श्लोक सुनकर यह अतिरेक हुआ था –

हरीतकीं भुंक्ष्व राजन् मातेव हितकारिणी ।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ।।
हरिं हरीतकीं चैव गायत्रीं जाह्नवी-जलम् ।
अन्तर्मल-विनाशाय स्मरेद् भक्षेज्जपेत् पिबेत् ।।

– हे राजन्, हरीतकी माता के समान कल्याणकारी है । इसका नित्य भक्षण करो । अपनी माता तो कभी-कभी क्रोधित भी हो जाती है, परन्तु पेट में पड़ी हरीतकी कभी नाराज नहीं होती । अन्तर की मलिनता दूर करने के लिए हरि का स्मरण, हरीतकी का भक्षण, गायत्री का जप तथा गंगाजल का पान करना चाहिए ।

इन्हीं को सुनकर थोड़ा अधिक हरीतकी चबाने के कारण मेरे दोनों होठ हमेशा सफेद दिखा करते थे ।

मैं इसी प्रकार उनके पास आता-जाता रहा । उन दिनों ठाकुर के पास मैं प्राय: हरीश तथा लाटू (स्वामी अद्भुतानन्द) को ही देखा करता था । इसी प्रकार आते-जाते एक दिन ठाकुर ने मुझसे कहा, ''यह क्या है? तू तो अभी बालक है । तूने ये बूढ़ों जैसे भाव क्यों अपना लिये हैं? इतना करना ठीक नहीं ।''

ठाकुर के पास आवागमन के पहले से ही मैं संध्या-वन्दन करते समय खूब प्राणायाम किया करता था । प्रतिदिन प्राणायाम की मात्रा बढ़ाते-बढ़ाते मेरी ऐसी अवस्था हो गयी कि मेरे शरीर में स्वेद तथा कम्प भी हुआ करता था । गंगाजी में डुबकी लगाकर, उसके तल में एक या दो पत्थरों को पकड़े हुए मैं काफी देर तक कुम्भक (साँस रोकने) किया करता था । प्रतिदिन इसी प्रकार प्राणायाम करते-करते इन क्रियाओं के साथ बड़ा लगाव हो गया था ।

ठाकुर के पास जाकर उन्हें इस विषय में सूचित करने पर उन्होंने मुझे प्राणायाम करने से मना किया, क्योंकि अधिक प्राणायाम करने से मुझे कोई भयानक रोग हो सकता था । उन्होंने मुझे नित्य गायत्री-मंत्र जपने का उपदेश देते हुए कहा, ''प्रतिदिन गायत्री मंत्र का जप करना ।''

ठाकुर को कोई बात स्वयं न बताने पर भी समझ जाते कि कहीं मुझे कालीबाड़ी में न खाना पड़ जाय या फिर मेरे स्वयंपाक हविष्यान्न में बाधा न पड़ जाय, इसीलिये मैं इच्छा न होते हुए भी ठाकुर से विदा लेकर चला जा रहा हूँ ।

सस्नेह शिक्षा

एक बार मैं एकादशी के दिन उपवास किये हुए अपनी धोती के छोर को गले में लपेटकर ठाकुर के लिए एक तरबूज लेकर ठीक दोपहर के बाद उनके पास पहुँचा ।

गर्मी के दिन थे । एक तो बालक और ऊपर से प्रचण्ड धूप ! इसके फलस्वरूप मेरा चेहरा लाल हो उठा था । ठाकुर के सामने तरबूज रखकर उन्हें प्रणाम करते ही वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले, ''क्या तू अभी लौट जाएगा?'' मैंने कहा, ''जी, नहीं ।''

सुबह के समय उन्होंने मुझे एक लोटा पानी लेकर अपने साथ पंचवटी की ओर चलने को कहा । मैं उनके साथ वहाँ पहुँचा । उन्होंने मुझे पूर्व की ओर मुख करके ध्यान करने को कहा । वे मुझे बताकर चले गये थे । थोड़ी देर बाद वे लौटे और मुझे पकड़कर थोड़ा सीधा करके बैठाने के बाद बोले, ''तू थोड़ा झुक जाता है ।''

इसके बाद मैं उनके साथ-साथ लौट आया ।

लौटने के बाद वे बोले, ''तू मेरे साथ चँदोवे के घाट की ओर चल ।'' **(क्रमश:)**

युवा भारत को स्वामी विवेकानन्द का सन्देश

प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी

(११ सितम्बर, १८९३ को स्वामी विवेकानन्द के शिकागो में हुए ऐतिहासिक व्याख्यान के १२५ वर्ष की पूर्ति के अवसर पर प्रधानमन्त्री माननीय श्रीनरेन्द्र मोदी जी ने ११ सितम्बर, २०१७ को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित छात्र-सम्मेलन को सम्बोधित किया । उसी का सम्पादित अंश विवेक ज्योति के पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है । – सं.)

आज ११ सितम्बर है। विश्व को २००१ से पहले यह पता ही नहीं था कि ९/११ का महत्त्व क्या है। दोष दुनिया का नहीं था, दोष हमारा था कि हमने ही उसे भुला दिया था। यदि हम न भुलाते तो शायद २१वीं शताब्दी का भयानक ९/११ न होता। सवा सौ साल पहले एक ९/११ का दिन था, जिस दिन इस देश के गेरुए वस्त्रधारी एक नवयुवक ने विश्व को भारतीय संस्कृति और गौरव से परिचय कराया था। विश्व जिसे गुलाम भारत के प्रतिनिधि के रूप में देख रहा था। लेकिन उनके आत्मविश्वास में इतनी शक्ति थी कि गुलामी की छाया न उसके चिन्तन में थी, न व्यवहार में और न वाणी में थी। उन्होंने किस विरासत को अपने अंदर संजोया होगा कि गुलामी के हजार साल के बावजूद उनमें वह ज्वाला धधक रही थी, वह विश्वास उमड़ रहा था। विश्व को देने की सामर्थ्य इस धरती में है, यहाँ के चिंतन में है, यहाँ की जीवनशैली में है।

हम स्वयं सोचें हमारे चारों ओर जब नकारात्मक चिन्तन का विपरीत वातावरण हो और हमें अपनी बात बोलनी हो, तो कितना डर लगता है। चार बार सोचते हैं, पता नहीं, कोई गलत अर्थ तो नहीं निकाल देगा। ऐसा तनाव होता है। किन्तु इन महापुरुष में वह कौन-सी शक्ति थी कि इन्होंने कभी उस तनाव का अनुभव नहीं किया।

अपनी उमंग, आत्मविश्वास और इस धरती की शक्ति को भलीभाँति जानने वाले ये व्यक्ति विश्व को सामर्थ्य और सही दिशा देने, उनकी समस्याओं के समाधान का रास्ता दिखाने का सफल प्रयास करते हैं। विश्व को पता तक नहीं था कि Ladies and Gentlemen के सिवाय भी कुछ सम्बोधन हो सकता है। जिस समय शिकागो धर्मसम्मेलन में Sisters and Brothers of America यह दो शब्द स्वामी विवेकानन्द के मुख से निकले, कई मिनटों तक तालियाँ बजती रहीं। उन दो शब्दों ने भारत की शक्ति का परिचय करा दिया था। वह एक ९/११ का दिन था। जिन व्यक्ति ने माँ भारती की पदयात्रा करने के बाद माँ भारती को अपने में संजोया था, उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, हर भाषा को, हर बोली को जिन्होंने आत्मसात् किया था, ऐसे एक महापुरुष पल-दो-पल में पूरे विश्व को अपना बना लेते हैं, अपने में समाहित कर लेते हैं । हजारों साल की विकसित हुई भिन्न-भिन्न मानव संस्कृति को वे अपने में समेट कर विश्व को अपनत्व की पहचान देते हैं, विश्व को जीत लेते हैं। एक वह ९/११ दिन था। वह हमारे लिये विश्व-विजयी दिवस था।

अमेरिका की धरती पर जहाँ प्रेम और अपनत्व का संदेश दिया गया, उस सन्देश को भुला देने का कारण ही २१वीं सदी की प्रारम्भ का एक ९/११ था, जिसमें उसी अमेरिका की धरती पर मानव का विनाश, संहार हुआ, जिसके विकृत रूप ने विश्व को हिला दिया था। तब विश्व को समझ में आया कि ९/११ को भारत से निकली हुई आवाज का इतिहास में कितना महत्त्व है। इसलिए मुझे लगता है आज ९/११ के दिन विवेकानन्द जी को अलग ढंग से समझने की आवश्यकता है।

यदि आप बारीकी से देखें, तो विवेकानन्दजी के दो रूप ध्यान में आएँगे। वे विश्व में जहाँ भी गए, वहाँ उन्होंने बड़े विश्वास के साथ, बड़े गौरव के साथ भारत की महान परम्पराओं का, भारत के महान चिंतन का महिमामंडन

किया। उसे व्यक्त करने में वे कभी थकते, रुकते नहीं थे, कभी उलझन अनुभव नहीं करते थे। विवेकानन्द का वह एक रूप था। उनका दूसरा रूप था, जब वे भारत में बात करते थे, तो हमारी बुराइयों, हमारी दुर्बलताओं पर कुठाराघात करते थे। वे जिस भाषा का प्रयोग करते थे, उस भाषा का प्रयोग यदि आज भी हम करें, तो शायद लोगों को आश्चर्य होगा कि ऐसे कैसे बोल रहे हैं। ये समाज की प्रत्येक बुराईयों के विरुद्ध आवाज उठाते थे। उस समय के समाज की कल्पना कीजिए, जब कर्मकाण्ड का अधिक महत्त्व था, पूजा-पाठ, परम्परा सहज सामाजिक जीवन की प्रकृति थी। ऐसे समय ३० साल का एक नौजवान खड़ा होकर कह दे, पूजा-पाठ, पूजा-अर्चना, मंदिर में बैठे रहने से कोई भगवान नहीं मिलने वाला है। जन-सेवा ही प्रभु-सेवा है। जाओ जनता-जनार्दन-गरीबों की सेवा करो, तब प्रभु प्राप्त होंगे। कितनी बड़ी शक्ति है!

वे संत-परम्परा से थे, लेकिन जीवन में कभी गुरु खोजने नहीं निकले थे। वे सत्य की तलाश में थे। महात्मा गाँधी भी जीवन भर सत्य की तलाश में थे।

स्वामीजी के परिवार की आर्थिक स्थिति कठिन थी। श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें माँ काली के पास कुछ माँगने के लिये भेजा। बाद में पूछा – कुछ माँगा? बोले, नहीं माँगा। कौन-सा व्यक्ति होगा जो काली के सामने खड़े होकर भी मांगने के लिए तैयार नहीं है। उनके भीतर वह कौन-सा लौहतत्त्व होगा, वह कौन-सी ऊर्जा होगी, जिसमें यह सामर्थ्य पैदा हुई?

विवेकानन्दजी ने अमेरिका में Sisters and Brothers of America कहा। हम स्वयं नाच उठे। लेकिन अपने देश में ही मैं नौजवानों से विशेष रूप से पूछता हूँ, क्या हम नारी का सम्मान करते हैं? क्या हम लड़कियों को आदरभाव से देखते हैं? जो देखते हैं, उनको मैं १०० बार नमन करता हूँ। लेकिन, जो उनमें मानव नहीं देख पाते कि यह भी ईश्वर की एक कृति है या अपने समान है, तो फिर स्वामी विवेकानन्द के वे शब्द Sisters and Brothers of America पर हमें तालियाँ बजाने का अधिकार है कि नहीं, हमें ५० बार सोचना है।

क्या हमने कभी सोचा कि विवेकानन्दजी कहते थे, जन-सेवा प्रभु-सेवा। देखिए ३० साल की उम्र में एक व्यक्ति पूरे विश्व में जय-जयकार करके आया। उस गुलामी के कालखंड में दो व्यक्तित्व जिन्होंने भारत में एक नई चेतना, नई ऊर्जा प्रकट की थी – एक जब रवीन्द्रनाथ टैगोर को नोबेल प्राइज मिला और जब स्वामी विवेकानन्द जी के ९/११ के भाषण की देश-विदेश में चर्चा होने लगी। ये दोनों बंगाल की संतान थे। कितना गर्व होता है जब मैं दुनिया में किसी को जाकर कहता हूँ कि मेरे देश के रवीन्द्रनाथ टैगोर ने श्रीलंका का राष्ट्रगीत, भारत का राष्ट्रगीत और बांग्लादेश का राष्ट्रगीत भी बनाया है। क्या हम अपनी इस विरासत के प्रति गर्व करते हैं? आज हिन्दुस्तान दुनिया में एक युवा देश है। ८०० मिलियन लोग इस देश में, विवेकानन्द जी ने जब शिकागो में भाषण दिया था, उससे भी कम उम्र के हैं। जिस देश की ६५ प्रतिशत जनसंख्या विश्व में डंका बजाने वाले विवेकानन्दजी से कम उम्र की है, उस देश में विवेकानन्द से बड़ी प्रेरणा क्या हो सकती है?

विवेकानन्दजी केवल उपदेशक नहीं थे। उन्होंने विचारों को आदर्शवाद में परिणत किया और दोनों के समन्वय से १२० वर्ष पहले रामकृष्ण मिशन संस्था का निर्माण किया। उन्होंने विवेकानन्द मिशन नहीं बनाया, रामकृष्ण मिशन को जन्म दिया। रामकृष्ण मिशन का जिस भाव से उदय हुआ, आज १२० साल के बाद भी यह न दुर्बल हुआ, न दिग्भ्रमित हुआ। उन्होंने इस संस्था की कैसी मजबूत नींव बनाई होगी! योजनाएँ कितनी सबल होंगी! दूरदर्शिता कितनी स्पष्ट होगी! कार्य-योजना कितनी सबल होगी! भारत के विषय में हर चीज की कितनी गहराई से अनुभूति की होगी! तब जाकर १२० साल बाद भी इस संस्था का आन्दोलन आज भी उसी भाव से चल रहा है।

मुझे भी उस महान परंपरा में कुछ पल आचमन लेने का सौभाग्य मिला है। जब विवेकानन्द जी के ९/११ की भाषण की शताब्दी थी, तो मुझे उस दिन शिकागो के उस सभागार में उस शताब्दी समारोह में भाग लेने का सौभाग्य मिला था। मैं कल्पना कर सकता हूँ कि कैसा भावमय विश्व था। कैसा वह भावमय पल था!

क्या कभी दुनिया में किसी ने सोचा है कि किसी व्याख्यान की १२५वीं वर्षगाँठ मनायी जाए। कुछ पल की वह वाणी, कुछ पल के वे शब्द सवा सौ साल के बाद भी जीवित, जागृत हैं और जागृति पैदा करने की सामर्थ्य रखते

हैं। इसे अपनी महान विरासत बनाने का हमें अवसर है।

क्या हमें 'वन्दे मातरम्' कहने का अधिकार है?

मैं जब यहाँ आया, इतनी पूरी ताकत से 'वंदे मातरम्, वंदे मातरम्, वंदे मातरम्' सुन रहा था। रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हृदय में भारत-भक्ति का भाव सहजरूप से जग जाता है। लेकिन मैं पूरे हिन्दुस्तान से पूछ रहा हूँ, क्या हमें 'वंदे मातरम्' कहने का अधिकार है? मैं जानता हूँ, मेरी यह बात बहुत लोगों को चोट पहुँचाएगी। हम लोग पान खाकर उस भारत-माँ पर पिचकारी मार रहे हैं और फिर 'वंदे मातरम्' बोलें, हम रोज सारा कूड़ा-कचरा भारत-माँ पर फेंके और फिर 'वंदे मातरम्' बोलें, ५० बार सोच लीजिए, क्या हमें 'वंदे मातरम्' कहने का अधिकार है?

'वंदे मातरम्' बोलने का इस देश में सबसे पहला अधिकार देशभर में सफाई का काम करनेवाले भारत-माँ की उन सच्ची संतानों को है। हमारी 'सुजलां सुफलां' भारतमाता है। हम सफाई करें या न करें, किन्तु गंदा करने का अधिकार हमें नहीं है।

गंगा के प्रति श्रद्धा हो। गंगा में डुबकी लगाने से पाप धुलते हैं। हर नौजवान की इच्छा होती है कि मैं अपने माँ-बाप को एक बार गंगा-स्नान कराऊँ, लेकिन उस गंगा को गंदा करने से हम अपने आप को रोक पाते हैं क्या? क्या आज विवेकानन्द जी होते तो, हमें इस बात पर डाँटते कि नहीं डाँटते? हमें कुछ कहते कि नहीं कहते?

कभी-कभी हम लोगों को लगता है कि हम स्वस्थ इसलिए हैं, क्योंकि हमारे पास उत्तम से उत्तम डॉक्टर हैं। जी नहीं, हम इसलिए स्वस्थ हैं कि कोई कामगार सफाई कर रहा है। अगर उसके प्रति डॉक्टर से भी अधिक सम्मान रहे, तब जाकर 'वंदे मातरम्' कहने का आनन्द आता है। मुझे याद है, एक बार मैंने बोल दिया पहले शौचालय फिर देवालय। बहुत लोगों ने मेरे बाल नोंच लिये थे। लेकिन आज मुझे खुशी है कि देश में ऐसी बेटियाँ हैं, जो शौचालय नहीं, तो शादी नहीं करेगी, ऐसा तय कर लिया है।

हम लोग हजारों साल से टिके हैं, उसका कारण क्या है? हम समयानुकूल परिवर्तन करते हैं। हम ऐसे लोगों को जन्म देते हैं, जो हमारी बुराइयों के विरुद्ध लड़ाई लड़ने का नेतृत्व करते हैं, वही हमारी शक्ति है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द जी का हम स्मरण करते हैं। ९/११ का केवल शब्द-भंडार नहीं था। वह एक तपस्वी की वाणी थी, जो निकलकर विश्व को अभिभूत कर देती थी। नहीं तो, हिन्दुस्तान को साँप-सपेरों का देश, जादू-टोनावालों का देश, एकादशी को क्या खाना और पूर्णिमा को क्या नहीं खाना, इसी रूप में हमारी पहचान थी। विवेकानन्द दुनिया के सामने कह दिया था, क्या खाना, क्या नहीं खाना यह मेरे देश की संस्कृति परंपरा नहीं है, वह तो हमारी व्यवस्थाओं का एक हिस्सा है, हमारी सांस्कृतिक व्यवस्था अलग है। आत्मवत् सर्वभूतेषु, अहम् ब्रह्मास्मि, कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, यह हमारी सोच है। हम पूरे विश्व को सुसंस्कृत करेंगे, इस अर्थ में यह आर्य शब्द है, किसी जाति, धर्म-परिवर्तन के लिए नहीं है। जिस महान विरासत की परंपरा में हम पले-बढ़े हैं, यह सब इस धरती की पैदावार है। ये सदियों की तपस्या से निकली हुई चीजें हैं। यह देश ज्ञान से भरा हुआ है। जब कोई आता है, तो कहता है देनेवाला का भी भला, न देनेवाला का भी भला। इसलिए स्वामी विवेकानन्दजी की सफलता का मूल आधार उनमें आत्मसम्मान और आत्मगौरव का भाव था। इस महान देश के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने यहाँ की विरासत आत्मगौरव, आत्मसम्मान को प्रस्तुत किया था।

क्या हम कभी सोचते हैं कि हम क्या कहते हैं। किसी अच्छी जगह पर हम चले जाएँ, बढ़िया प्राकृतिक वातावरण हो, साफ-सुथरा हो, बहुत अच्छा लगता हो, तो क्या हम कहते हैं कि हिन्दुस्तान है? अगर भीतर आत्म-सम्मान, आत्मगौरव से पले-बढ़े होते, तो यह भाव नहीं आता, गर्व होता।

आज के सन्दर्भ में विवेकानन्द जी को देखें। मैं Make in India कहता हूँ। कुछ लोग कहते हैं Make in India नहीं Made in India चाहिए। लेकिन विवेकानन्दजी और जमशेदजी टाटा के बीच जो संवाद हुआ, उनके बीच जो पत्राचार हुआ है, यदि किसी ने देखा होगा तो पता चलेगा कि उस समय हिन्दुस्तान गुलाम था, तब विवेकानन्दजी जमशेदजी टाटा जैसे व्यक्ति को कह रहे हैं कि भारत में उद्योग लगाओ न, Make in India बनाओ न। स्वयं जमशेदजी टाटा ने लिखा है, विवेकानन्द जी की प्रेरणा से मैं भारत में उद्योग बनाने के लिए प्रस्तुत हुआ।

आप हैरान होंगे, भारत में प्रथम कृषि क्रान्ति विवेकानन्द जी के विचारों में निकलती है। डॉक्टर सेन जो कृषि क्रान्ति के मुखिया माने जाते हैं, उन्होंने अपनी संस्था का नाम

'विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसन्धान संस्था' रखा था। हिन्दुस्तान में कृषि को आधुनिक बनाना चाहिए, वैज्ञानिक रिसर्च सेन्टर बनाना चाहिए, ऐसी बातें विवेकानन्दजी उस उम्र में करते थे।

आज ९/११ पंडित दीनदयाल उपाध्याय की शताब्दी समारोह से भी जुड़ा है। आज ९/११ जिस महापुरुष ने महात्मा गांधी को जी करके दिखाया, ऐसे आचार्य विनोबा भावे की भी जन्म जयंती है।

जनसेवा ही प्रभुसेवा है, यह विवेकानन्दजी कहते थे। आचार्य विनोबाजी के निकट के साथी दादा धर्माधिकारी थे। गांधीजी जो सोचते थे, कहते थे उसको जीवन के द्वारा व्यक्त करने का काम विनोबाजी ने किया और विनोबाजी जो सोचते थे, उसको शब्दों में ढालने का काम दादा धर्माधिकारी जी के चिंतन में दिखता है। दादा धर्माधिकारी जी ने एक किताब में बड़ा मजेदार लिखा है। कोई नौजवान उनके पास नौकरी के लिए किसी परिचित के द्वारा आया था। वह चाहता था कि धर्माधिकारीजी कुछ सिफारिश करें, कुछ मदद करें, तो कहीं काम मिल जाए। दादा धर्माधिकारी जी ने उससे पूछा – तुम्हें क्या आता है? तो उसने कहा कि मैं ग्रेजुएट हूँ। उन्होंने दोबारा पूछा, तुम्हें क्या आता है? उसने दोबारा कहा ग्रेजुएट हूँ। वह धर्माधिकारीजी की बात समझ नहीं पाया। उन्होंने तीसरी बार पूछा, भाई तुम्हें क्या आता है? उसने कहा, ग्रेजुएट हूँ। धर्माधिकारी ने पूछा – तुम्हें टाइपिंग आती है क्या? बोला, नहीं। खाना पकाना आता है? बोला, नहीं। फर्नीचर बनाना आता है? बोला, नहीं। चाय-नाश्ता बनाना आता है? उसने कहा, जी नहीं, मैं तो ग्रेजुएट हूँ।

अब देखिए, विवेकानन्दजी ने क्या कहा था? उनकी हर बात हमारे दिमाग को बड़ा हिला देने वाली है। उन्होंने कहा था – शिक्षा का अर्थ यह नहीं है कि तुम्हारे मस्तिष्क में ऐसी बहुत-सी बातें इस प्रकार ठूँस दी जाएँ कि उनमें अन्तर्द्वन्द्व होने लगे और तुम्हारा मस्तिष्क उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामञ्जस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने के योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को पचाकर उसके अनुसार अपना जीवन और चरित्र गठित कर सको, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कण्ठस्थ कर लिया है।'' उन्होंने knowledge और skill को अलग किया। आज हाथ में certificate है, उसका तब महत्त्व है, जब हाथ में कौशल है। इस सरकार ने कौशल-विकास को आगे बढ़ाने की कोशिश की है।

हमारे देश में कौशल-विकास विभागों में बिखरा पड़ा था, हमने उसे एक जगह लाकर उसका अलग मन्त्रालय बनाया, जिससे आत्मनिर्भरशील नौजवान तैयार हो सकें। मेरे देश का नौजवान नौकरी खोजनेवाला नहीं, नौकरी देनेवाला बनना चाहिए। मेरे देश का नौजवान माँगनेवाला नहीं, देनेवाला बनना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द जी घिसी-पीटी, टूटी-फूटी चीजों का बहिष्कार करने के लिए आह्वान करते हैं। सामाजिक जीवन भी तभी प्रगति कर सकता है, जब नित्य नूतन प्राणवान हो, तभी जाकर हम सफल होते हैं। हमारे देश की युवा पीढ़ी में वह साहस चाहिए। कुछ लोगों को यही डर लगता है, यदि यह काम करूँ और फेल हो जाऊँ तो। आपने दुनिया में कोई इंसान देखा है, जो असफल हुए बिना सफल हुआ हो, कभी-कभी सफलता का मार्ग असफलता बनाती है। इसलिये घबराना जिंदगी नहीं होती दोस्तो! जो किनारे पर खड़ा है, वह डूबता नहीं, जो पानी में छलांग मार रहा है, डूबता भी है और डूबते हुए तैरना भी सीख लेता है। लहरों को पार करने का सामर्थ्य तालाब में, नदी में, समुद्र में कूदने से आता है। स्वामी विवेकानन्द जी ऐसे नौजवानों की अपेक्षा करते हैं।

आज भारत सरकार अभियान चला रही है start-up India। इससे बिना गारंटी के बैंक से पैसा मिलता है। मैं चाहूँगा, मेरे देश का नौजवान मेरे देश की समस्याओं के समाधान के लिए नए Innovation, नए उत्पाद लेकर आए और लोगों के पास जाए। हिन्दुस्तान बहुत बड़ा बाजार है। देश नौजवानों की बुद्धि और सामर्थ्य की प्रतीक्षा कर रहा है। विवेकानन्द जी ने ज्ञान और कौशल को जो अलग किया है, आज समय की मांग है। उसी भाव से हम कौशल को आगे बढ़ाते चलें। हमने नीति आयोग के द्वारा Atal Innovation Mission App शुरू किया है। उसके साथ Atal Tinkering Labs है। देश के छोटे-छोटे बालक जो इस प्रकार के Innovation करते हैं, उनको प्रोत्साहन देने की एक शान्तिपूर्वक क्रान्ति चल रही है।

जब प्रणव दा राष्ट्रपति थे, तो देश भर से इस प्रकार के बच्चों को एक बार उन्होंने बुलाया था । १२-१५ बहुत

प्रतिभावान बच्चे राष्ट्रपति भवन में नयी-नयी चीजें लेकर के आए थे। प्रणब दा ने मुझे आग्रह किया कि जरा इन बच्चों से मिलो, मैं देखने गया। मैं हैरान था। ये ८वीं, ९वीं, १०वीं कक्षा के बच्चे चीजें बनाकर लाये थे। कूड़े-कचरे से कैसे उपयोगी वस्तु बनाना है, इसकी योजना बनाकर लेकर आए थे। देखिए स्वच्छता अभियान का कैसा प्रभाव था, वे उन चीजों को लेकर आए थे कि कूड़े-कचरों से क्या बन सकता है। कहने का मेरा तात्पर्य यह है कि भारत में प्रतिभा की कमी नहीं है। उस पर हमें सोचना चाहिए।

आज पूरे विश्व में विदेश नीति पर विभिन्न ग्रूपों की कई प्रकार की ढेर सारी चर्चाएँ होती हैं। कभी विवेकानन्दजी को किसी ने पढ़ा है कि उनकी विदेश नीति क्या थी? स्वामी विवेकानन्द जी ने उस समय एक-एशिया की बात कही थी और आज १२० साल के बाद दुनिया के सामने दीख रहा है। उन्होंने कहा था कि विश्व जब संकटों से घिरा होगा, तब उसे मार्ग दिखाने की शक्ति अगर किसी में होगी, तो एक-एशिया में होगी। एक सांस्कृतिक विरासत का धनी है - एक एशिया। कोई कहता है २१वीं सदी चीन की है, कोई कहता है, भारत की है, लेकिन इसमें कोई मतभेद नहीं है कि सारी दुनिया कहती है कि २१वीं सदी एशिया की है।

१२५ साल पहले इस महापुरुष ने एक-एशिया की कल्पना की थी। विश्व की समस्याओं का समाधान करने की मूलभूत शक्ति इस एक-एशिया में है, और इसकी हजारों वर्ष की विरासत का दर्शन विवेकानन्दजी ने किया था, इसकी योजना उनके पास थी। इसलिए आधुनिक सन्दर्भ में हमें विवेकानन्दजी को देखना चाहिए।

वे entrepreneurship – उद्यमिता विकास की बात करते थे, शक्तिशाली भारत के आधार कृषि-आन्दोलन और innovation की बात करते थे। समाज में जो छुआछूत, ऊँच-नीच का दोष है, उसके खिलाफ लड़ाई लड़ने की भी बात करते थे। हम दीनदयालजी की जन्म-शताब्दी मना रहे हैं, वे भी अन्त्योदय की बात करते थे। महात्मा गाँधी भी कहते थे, कोई भी निर्णय करिए तो समाज के अन्तिम व्यक्ति का भला होगा कि नहीं, इतना देख लीजिए, तब आपका निर्णय सही होगा।

पिछले दिनों कुछ नौजवानों ने कार्यक्रम किया। वह कार्यक्रम अटलजी के समय जो गोल्डन चतुष्कोण बना था, उस पर ट्रेवलिंग करने का था। उन लोगों ने शायद ६००० किलोमीटर साइकिल पर Relay Race किया था। उनका बड़ा अच्छा मंत्र था – उन्होंने कहा था कि follow the rule and India will Rule – अनुशासन में रहो, तो भारत शासन करेगा। हम १२५ करोड़ देशवासी इतना अनुशासित रहें, तो विवेकानन्दजी का जो सपना था कि मेरा भारत विश्व गुरु बनेगा, वह अपने आप पूर्ण हो जायेगा।

एक ९/११ जिसने संहार किया, विश्व को आतंकवाद में झोंक दिया। मानव-मानव का दुश्मन बन गया। ऐसे समय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विचार लेकर हम चले हैं। हम लोग प्रकृति में भी परमात्मा को देखनेवाले, पौधे में भी परमेश्वर को देखनेवाले, नदी को भी माँ मानने वाले, पूरे ब्रह्माण्ड को परिवार मानने वाले लोग हैं। संकटों से घिरी हुई मानवता को, विश्व को हम तब कुछ दे पाएँगे, जब हम अपनी बातों पर गर्व करें और समयानुकूल परिवर्तन करें। जो मान्यताएँ गलत हैं, समाज के लिए विनाशक हैं, उसे नष्ट करने के लिए संघर्ष करें।

स्वामी विवेकानन्द ने जिस रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, उसके १२५ साल हो गये। २०२२ में भारत की आजादी के ७५ साल हो जायेंगे। हम कोई संकल्प ले सकते हैं क्या? वह संकल्प हमारा जीवन व्रत बनना चाहिए। मैं यह करूँगा, ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिये। तब आपके जीवन जीने का अलग आनन्द होगा। कभी-कभी हमारे देश में कालेज, विश्वविद्यालय के छात्रनेता चुनाव लड़ते समय कहते हैं, हम यह करेंगे, हम वह करेंगे, लेकिन अभी तक मैंने नहीं देखा कि किसी ने यह कहा हो कि हम परिसर साफ रखेंगे। आप चुनाव के दूसरे दिन किसी विश्वविद्यालय में जाइए, क्या पड़ा होता है वहाँ? आप जानते हैं। फिर हमें वन्दे मातरम्, क्या २१वीं सदी हिन्दुस्तान की सदी बनानी है, गाँधी, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, सुभाष बाबू और स्वामी विवेकानन्द के सपनों का भारत कहने का अधिकार है? क्या हमलोंगो का कुछ दायित्व नहीं है? प्रबन्धनवालों को पढ़ाते हैं न कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ है। इसलिए यह सोचना आवश्यक है – मैं करूँगा, यह मेरी जिम्मेदारी है। आप देखिए हिन्दुस्तान को बदलते देर नहीं लगेगी। अगर १२५ करोड़ हिन्दुस्तानी एक कदम चलें, तो हिन्दुस्तान १२५ करोड़ कदम आगे बढ़ जाएगा।

अपनी संवेदनाओं को प्रकट करने के लिए विश्वविद्यालय से बड़ी कोई जगह नहीं होती है। कालेज में अलग-अलग

दिवस मनाते हैं। लेकिन क्या कभी हमने सोचा है कि हम निश्चित करें कि हरियाणा के कालेज में तमिल-डे और पंजाब की कालेज में केरल-डे मनाएँगे। दो गीत उसके गाएँगे और दो गीत उसके सुनेंगे। उनके जैसा वस्त्र पहनकर उस दिन कालेज आएँगे। हाथ से भोजन करेंगे। कालेज में कोई मलयालम, तमिल फिल्म देखेंगे। वहाँ से कुछ नौजवानों को बुलाकर कहेंगे, भाई तमिलनाडु के गाँवों में कैसे खेल खेले जाते हैं, आओ खेलते हैं। मुझे बताइए वह दिवस मनेगा कि नहीं? उससे श्रेष्ठ भारत बनेगा कि नहीं बनेगा? आप लोग 'विविधता में एकता' का नारा बहुत बोलते हैं। इस विविधता का गौरव जीने का प्रयास हम करते हैं क्या? जब तक हिन्दुस्तान में हम हर राज्य और हर भाषा के प्रति गौरव का भाव पैदा नहीं करेंगे, तब तक हम उसे श्रेष्ठ नहीं बना पायेंगे।

मुझे याद है, अभी तमिल विश्वविद्यालय के, तमिलनाडु के नौजवान ऊपर आए, मैंने उन्हें वण्णक्कम कहा, वे एकदम खुश हो गए। एकदम छू गया उनको कि ये अपने हैं। क्या हमारा मन नहीं करता है कि हम ऐसा वातावरण अपने विश्वविद्यालय में बनाएँ। क्या कभी नहीं लगता है कि विश्वविद्यालय में पंजाब के सिक्ख गुरुओं का दिवस मनाकर उनके त्याग, तपस्या, बलिदान को देखें। हम रोबोट नहीं बन सकते, हमारे भीतर का इंसान हर पल उजागर होते रहना चाहिए। हम वह करें, जिससे देश की शक्ति बढ़े, देश की आवश्यकता की पूर्ति हो। जब तक हम इनसे अछूत रहेंगे हम धीरे-धीरे सिमट जाएँगे।

विवेकानन्दजी ने शिकागो धर्मसभा में कूपमंडूकता की एक कथा सुनाई थी। हम वैसे नहीं बन सकते। हम तो जय जगत वाले लोग हैं। हमें पूरे विश्व को अपने भीतर समाहित करना है। उपनिषद से उपग्रह तक की यात्रा को, विश्व के हर विचार को, जो हमारी मानवता के लिए अनुकूल है, हमने स्वीकार करने में कभी संकोच नहीं किया है। हम डरे भी नहीं हैं कि कोई हमें आकर कुचल जाएगा। बल्कि हमारी सोच है कि जो आएगा, उसे हम अपना बना लेगें। उसकी जो अच्छाई है, उसको लेकर आगे चलेंगे। तभी तो भारत विश्व को कुछ देने में समर्थ बनेगा। किसी गुलामी के कालखण्ड में हम रक्षात्मक प्रवृत्ति का जीवन जी रहे थे, किन्तु आज हममें समर्थ का भाव होना चाहिये कि हम किसी चीज से परेशान नहीं होंगे। मैं दुनिया में जहाँ जाता हूँ, तो मैं अनुभव कर रहा हूँ कि हिन्दुस्तान के प्रति देखने का विश्व का दृष्टिकोण बदल चुका है। यह राजनीतिक शक्ति से नहीं है, जनशक्ति से है, सवा सौ करोड़ देशवासियों की शक्ति से है। भारत को आधुनिक बनाने के लिये हमारा सपना होना चाहिए। क्यों मेरा देश आधुनिक न हो? क्यों मेरे देश का नौजवान दुनिया की बराबरी न करे? इसे समर्थ क्यों न होना चाहिए? कभी मैं एक बार किसी महापुरुष से मिला था। बहुत पहले की बात है। उन्होंने कहीं मेरा भाषण पढ़ा होगा। तब मैं राजनीति में नहीं था। उन्होंने मुझे कहा, आपको पता है, हमारे हिन्दुस्तान की कठिनाई क्या है? मैंने कहा क्या? उन्होंने कहा, हमलोग कहते हैं, पाँच हजार साल पहले ऐसा था, दो हजार साल पहले ऐसा था, बुद्धकाल में ऐसा था, राम के युग में ऐसा था। इसी से बाहर नहीं निकले। आज आप कहाँ पर हो, उस आधार पर संसार आपका मूल्यांकन करता है। हम भाग्यवान हैं कि हमारे पास एक महान विरासत है, लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि हम उसी के गौरवगान से आगे बढ़ने को तैयार नहीं हैं। गौरवगान आगे बढ़ने की प्रेरणा के लिए होना चाहिए, गौरवगान पीछे हट कर रुकने के लिए नहीं होना चाहिए। हमें गौरवगान से आगे बढ़ना है। युवा परिस्थिति का नाम नहीं है, युवा एक मन:स्थिति का नाम है। जो बीते हुए कल में खोया रहता है, उसे युवा नहीं मान सकते। लेकिन जो बीती हुई बातों की श्रेष्ठता को लेकर आगे आनेवाले कल के लिए सोचता है, समझता है, सुनता है, वह युवा है। आप उस युवा-भाव को आत्मसात् करते हुये संकल्प लेकर आगे बढ़ें, इसी भावना के साथ आज दीनदयाल उपाध्याय जी, स्वामी विवेकानन्द जी, विनोबा भावे जी को नमन करता हूँ और आप सब मेरे देशवासी नौजवानों को बहुत-बहुत शुभकामनाएँ देता हूँ। OOO

भगवान के प्रति किस प्रकार का आकर्षण होना चाहिए? सती का पति की ओर, कृपण का धन की ओर तथा विषयी का विषय की ओर जो आकर्षण होता है, उन तीनों को एकत्र मिलाने पर जितना आकर्षण होता है, उतना यदि भगवान के प्रति हो, तो उनकी प्राप्ति होती है ।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस

सारगाछी की स्मृतियाँ (६३)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – ठाकुर ने कहा है, पहले ईश्वर-प्राप्ति करो, उसके बाद कर्म करो। हमारा संघ कहता है – पहले कर्म करो, फिर ईश्वर-प्राप्ति करो। इन दोनों में सामंजस्य कहाँ है?

महाराज – ठाकुर ने कहा है – पहले ईश्वर-प्राप्ति करो, तत्पश्चात् निष्काम कर्म करो। अच्छी बात है। किन्तु ठाकुर ने ऐसा उन लोगों से कहा है, जो उनके पास जाते थे । वे लोग कितने वैराग्यवान थे, उन्हें देखा है? किन्तु हमलोग, जिनकी कर्म-स्पृहा बिलकुल समाप्त नहीं हुई है, यदि बलपूर्वक कर्मत्याग करें, तो या तो पागल हो जायेंगे, अन्यथा अपरिपक्व होकर ही मर जायेंगे। इसीलिए हमलोगों को कर्म करना होगा – 'आरुरुक्षो:'। किन्तु एक बात है, केवल कर्म करने से ही वैराग्य नहीं होता है, बल्कि उससे बन्धन भी होता है। पहले सारे सिद्धान्त – योग, निष्काम कर्म, उपासना और ज्ञान के बारे में अच्छी तरह जानकर ऐसे लोगों अथवा गुरु के निकट उसके बारे में सुनना होगा और साथ ही साथ अभ्यास करना होगा। जब धारणा दृढ़ होगी, तब निष्काम कर्म का प्रयास सम्भव हो सकता है। किन्तु जब सिद्धान्त को लेकर मत्त रहोगे, तब भी कर्म-संस्कार तो है ही। इसीलिए गुरु के पास से योग, ज्ञान, निष्काम कर्म का लगभग ८-१० वर्षों तक अभ्यास करने के बाद कर्मवासना क्षय करने के लिए निष्काम कर्म करना होगा, तब मोक्ष होगा – 'शम: कारणमुच्यते।' पहला स्तर है - जो लोग मुमुक्षु हैं, द्वितीय स्तर है – जो मुमुक्षु होने हेतु दृढ़ निश्चय किए हुए हैं।

इस युग के कर्ता (स्वामी) ठाकुर हैं। उनकी प्रत्येक बात का अक्षरश: पालन करना होगा, ऐसा नहीं करने से महान संकट होगा। गीता में भगवान कहते हैं –

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि।।
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रित:।।
सर्वकर्मफलत्यागं तत: कुरु यतात्मवान्।।

भगवान किसी प्रकार भी हमें नहीं छोड़ रहे हैं। कहते हैं – अभ्यासयोग द्वारा मेरी उपासना करो। यदि इसे भी नहीं कर सकते हो और यदि कर्म करने की इच्छा है, तो अच्छे-अच्छे कर्म करो। जैसे गुरु के निर्देशानुसार गो-चारण कराना। यदि यह भी नहीं कर सकते हो, तो जो कुछ भी कर्म करते हो, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, उन सभी कर्मों के फल को ईश्वर को समर्पित कर दो। इस तरह अभ्यास करते-करते धीरे-धीरे ऊपर उठ जाओगे। असली बात है – जो जहाँ है, वहीं से ऊपर उठना आरम्भ करो। मैं अच्छा-खराब जो भी हूँ, हमें तत्पर रहना होगा। बैठे रहने से नहीं होगा, अभी से आरम्भ कर दो।

सुरेन बाबू सुरापान नहीं छोड़ पा रहे थे। ठाकुर कहते हैं – ठीक है, सुरा को माँ को निवेदित करके ग्रहण करो। पीये न, कितने दिन पीयेगा? ईश्वर का स्मरण करते-करते उधर का रस पाकर स्वयं ही भक्ति, उपासना होने लगेगी।

प्रश्न – भक्ति क्या वस्तु है?

महाराज – भक्ति मनुष्य की बाह्य वस्तु नहीं है, यह मनुष्य की प्रथम और आदिमूलक मनोवृत्ति है। बच्चा पहले ही माँ की भक्ति करना सीखता है – माँ की गोद में रहते-रहते माँ से अपनत्व हो जाता है। पशु-पक्षियों में भी वही मनोवृत्ति दिखाई पड़ती है। इस मनोभाव को उदात्त बनाकर ईश्वर की ओर मोड़ देने को ही भक्ति, उपासना कहते हैं।

पुरुषों में स्त्रियों के प्रति आकर्षण अधिक होता है, इसीलिये तो वामाचार, तान्त्रिक, कापालिक और किशोरी-भजन आरम्भ हुआ। गृहस्थों को निर्देश दिया गया – स्त्री-संग करो, किन्तु सात दिन स्त्री के प्रति देवी-भाव रखो। इस

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

बीती बातें बीते पल

स्वामी गम्भीरानन्द महाराज की विनोदप्रियता

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के एकादश संघाध्यक्ष थे। वे श्रीरामकृष्ण के पार्षद स्वामी शिवानन्द महाराज जी के शिष्य थे। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज अपने नाम के अनुरूप गम्भीर थे। उनका मन सदैव एक उच्च धरातल पर रहता था और वे सात्त्विक आनन्द से परिपूर्ण रहते थे। साधु एवं भक्तगण उनके गम्भीर स्वभाव के कारण उनके पास जाने में संकोच करते थे। किन्तु उनके सरल, मधुर और गम्भीर स्वभाव के पीछे उनकी विनोदपूर्णता की कुछ झलकें उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आने वालों को प्राप्त होती थीं।

एकबार महाराज की उपस्थिति में साधु-ब्रह्मचारी कुछ विनोद कर रहे थे। उस बात को लेकर उन्होंने महाराज से पूछा, ''महाराज, इस विषय में आपका क्या मत है?'' महाराज ने मुस्कुराते हुए कहा, ''तुम लोगों की हँसी-मजाक भला मैं कैसे समझ सकता हूँ? मेरा तो नाम ही गम्भीर है!'' सब लोग हँस पड़े।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज तब राँची आश्रम आए हुए थे। वहाँ एक ब्रह्मचारी महाराज उनसे शास्त्र-अध्ययन करना चाहते थे। वे दक्षिण प्रान्त के थे और उन्हें बंगला ठीक से नहीं आती थी। उन्होंने टूटी-फूटी बंगला भाषा में महाराज से कहा, ''महाराज, आमि आपनार क्लास निते चाइ।'' (महाराज, मैं आपकी क्लास लेना चाहता हूँ।) स्वामी गम्भीरानन्द जी भी समझ गए कि गड़बड़ कहाँ हो रही है। उन्होंने आनन्द मनाने के लिए अन्य साधु-ब्रह्मचारियों को बुलाया और हँसते हुए कहा, ''देखो तो, यह क्या कहना चाहता है?'' सबके सामने उन ब्रह्मचारी महाराज ने वही बात दुहरायी। सभी लोग ठहाका मारकर हँस पड़े।

एकबार महाराज इलाहाबाद आश्रम आए हुए थे। कुछ साधु वहाँ से चित्रकूट दर्शन के लिए गए हुए थे, किन्तु पूजनीय महाराज के सेवक महाराज नहीं जा सके। महाराज ने उनसे पूछा, ''क्या तुमने पहले चित्रकूट देखा है?'' सेवक महाराज ने कहा, ''नहीं।'' महाराज ने हँसते हुए पूछा, ''मान लो, मरने के बाद तुम रामकृष्ण-लोक गए और वहाँ ठाकुर ने तुमसे पूछा कि तुमने चित्रकूट का दर्शन क्यों नहीं किया, तो उन्हें क्या उत्तर दोगे।'' सेवक महाराज ने भी हँसते हुए उनसे प्रश्न किया, ''महाराज, आपने भी तो चित्रकूट का दर्शन नहीं किया, आपसे भी ठाकुर ने यदि यही प्रश्न किया, तो आप क्या उत्तर देंगे?'' तब महाराज ने हँसते हुए कहा, ''मैं उन्हें कहूँगा, आपने भी तो चित्रकूट का दर्शन नहीं किया, तो मैं कैसे करूँ?''

स्वामी गम्भीरानन्द जी ने उनके गुरुदेव महापुरुष महाराज के बारे में एक प्रसंग सुनाया था। एकदिन वे और कुछ साधु-ब्रह्मचारी महापुरुष महाराज के सामने खड़े थे। उसी समय एक साधु ने प्रणाम कर महापुरुष महाराज से कहा, ''महाराज मैं तपस्या करने हृषीकेश जा रहा हूँ।'' तब महापुरुष महाराज ने कहा, ''एक साधु तपस्या करने जा रहा था। उससे किसी दूसरे साधु ने पूछा, 'स्वामीजी आप कहाँ जा रहे हैं?' पहले साधु ने गरजकर उत्तर दिया, 'मैं हृषीकेश जा रहा हूँ।' कुछ महीनों बाद जब वे साधु हृषीकेश से लौटे, तब किसी ने उनसे पूछा, 'स्वामीजी आप कहाँ से आ रहे हैं?' तब उन्होंने बड़ी ही पतली आवाज में कहा, 'अ-रे-भा-ई, हृ-षी-के-श से।' इतने दिनों तक छत्र की रोटी खाकर एवं मलेरिया रोग से कष्ट पाकर स्वामीजी का अस्थि-चर्म ही रह गया था।'' ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

प्रकार स्त्री-संग का भी ईश्वरोपासना में उदात्तीकरण किया गया। स्वामीजी ने एक दिन इन सबकी बहुत निन्दा की थी। तब ठाकुर ने कहा – नहीं, नहीं, यह भी एक मार्ग है, किन्तु यह शौचालय की ओर से घर में प्रवेश का द्वार है।

भक्ति तो मैंने घर में देखी है। बहुत कुछ तैयारी नहीं करनी पड़ती थी। घर में गोविन्दजी की सेवा-पूजा होती थी। महिलाएँ बड़े भोर से ही गोविन्दजी के काम में लग जाती थीं। कोई फूल तोड़ता, कोई माला बनाता, कोई बर्तनों को साफ करता। ऐसा लगता, जैसे साक्षात् गोविन्दजी विद्यमान हैं। जैसे घर में जेठ जी हैं, तो सभी लोग कर्म में तत्पर और सजग रहते हैं। यही तो उपासना है।

देखो न, जितेन महाराज कितने विद्वान हैं, फिर भी माँ-माँ कहते रहते हैं। शान्तानन्द स्वामी माँ-माँ कहते हुए परमानन्द में रहते हैं।

ज्ञानयोग के सम्बन्ध में 'पंचदशी' में कितनी ही बातें सुनोगे, किन्तु देखोगे कि केवल तीन बातें ही कही गयी हैं – पंचकोश, रथी-आत्मा, अवस्थात्रय। पंचकोश के विचार से ही मुक्ति सम्भव है – पेट में क्षुधा, शरीर में कष्ट-व्यथा, आघात, प्राण रहने में सबलता-दुर्बलता, मन रहने पर अपशब्द कहने से विक्षोभ इत्यादि का बुद्धि से विचार कर इनकी उपेक्षा करनी चाहिये। इसे ही ज्ञानयोग कहते हैं। **(क्रमशः)**

ईशावास्योपनिषद् (१)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

सौभाग्यशाली श्रीमती सरला बिड़ला जी, भाई बसंतकुमार जी, समागत देवियो और सज्जनो ! प्रति वर्ष की भाँति इस बार पुन: आपके इस कार्यक्रम में आना हुआ है। प्रतिवर्ष फरवरी में आता था, तो सुबह का कार्यक्रम बिड़ला पार्क में होता था। वहाँ के शान्त, पवित्र वातावरण का लाभ हमलोगों को मिल जाता था। अभी अप्रैल का महीना है, गर्मी भी बहुत है। वक्ता और श्रोता दोनों को उस ताप से कष्ट न हो, इस दृष्टि से सुबह का कार्यक्रम यहाँ पर रखा गया है। ईशावास्योपनिषद को प्रात:कालीन चिन्तन का विषय बनाया गया है। आप सब लोग सत्संगी हैं। आप बहुत वर्षों से परम आदरणीय स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज का सत्संग प्राप्त करते रहे हैं, जहाँ पर गीता, उपनिषदों पर चिन्तन चलता रहता है।

उपनिषद हमारी अद्भुत धरोहर है, जिसके आधार पर वेदान्त खड़ा हुआ है। वेदान्तसार नाम का एक छोटा-सा ग्रन्थ है। उसमें वेदान्त की परिभाषा दी गई है – वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणम् – वेदान्त वह है, जिसका प्रमाण उपनिषद है। प्रमा का तात्पर्य ज्ञान है और प्रमाण का तात्पर्य होता है – ज्ञान का पुष्टीकरण। जिस ज्ञान का पुष्टीकरण उपनिषदों के द्वारा हो, उसे वेदान्त कहा गया है। वैसे वेदान्त का शब्दार्थ होता है – वेद का अन्त। वेद का तात्पर्य ज्ञान है। विद् धातु से वेद बना है। विद् धातु का तात्पर्य होता है जानना। इसलिए वेद का अर्थ हुआ ज्ञान। वेदान्त का अर्थ हुआ ज्ञान का अन्त। जहाँ पर ज्ञान अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका हो, उसको हम वेदान्त कहते हैं। सामान्य रूप से जिन ग्रंथों को हम वेदान्त कहते हैं, कुछ लोग कहते हैं कि वह वेदों का अन्तिम भाग कहलाता है। ऐसी बात नहीं है कि हम ऋगवेद को उठा लें और उसके अन्तिम अध्यायों को देखें, तो वह वेदान्त हो जायेगा, या यजुर्वेद के अन्तिम अध्यायों को वेदान्त कह दें। वेदान्त का तात्पर्य ज्ञान की पराकाष्ठा से है। जहाँ ज्ञान अपनी सीमा को पहुँच चुका हो, उससे परे ज्ञान की और कोई कल्पना न हो, उसे वेदान्त कहा गया है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि एकत्व से बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं है। ज्ञान की पराकाष्ठा है, उस एकत्व का अनुभव, जहाँ दो हैं ही नहीं। वेदान्त की दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है, जहाँ हम जाकर अद्वैत में उपस्थित होते हैं, वही वेदान्त है, वही ज्ञान की पराकाष्ठा है। जहाँ पर भी दो हैं, तो स्वाभाविक ही वहाँ पर द्वैत बुद्धि है, इसलिए उसे ज्ञान की पराकाष्ठा के रूप में नहीं लिया गया। वेदान्त का तात्पर्य ज्ञान की पराकाष्ठा है। उपनिषद उस वेदान्त का आधार तैयार करते हैं। ऐसे ये उपनिषद शास्त्र हैं।

आइये, अब दूसरे ढंग से थोड़ा-सा इस पर विचार कर लें। हमारे वेद ग्रन्थों को दो भागों में विभाजित किया गया है। एक को कहते हैं कर्मकाण्ड और दूसरे को कहते हैं ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत दो उपविभाग हैं – एक है ब्राह्मण और दूसरा है संहिता। इसी प्रकार ज्ञानकाण्ड के भी दो उपविभाग हैं – एक को कहते हैं आरण्यक और दूसरे को कहते हैं उपनिषद। ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत उपनिषद और आरण्यक आते हैं।

संहिता भाग मंत्र राशि है। ये भिन्न-भिन्न मंत्र हैं, जिन्हें आप ऋचाएँ कहते हैं। इन ऋचाओं, मंत्रों का संकलन संहिता कहलाता है। भिन्न-भिन्न देवताओं के निमित्त ये ऋचाएँ हैं। भिन्न-भिन्न देवताओं – सूर्य, आदित्य, मरुत, इन्द्र और वरुण के लिए जो ऋचाएँ हैं, प्रशस्तियाँ हैं, स्तुतियाँ हैं, ये श्लोक हैं, संहिता कहलाते हैं। किस यज्ञ में, किस देवता के निमित्त, किस ऋचा का पाठ करना चाहिये, आयोजन किस प्रकार का होना चाहिए, इसका वर्णन ब्राह्मण भाग में है। जब व्यक्ति वानप्रस्थी हो जाता है, तो भौतिक यज्ञादि के लिए उसके पास कोई द्रव्य नहीं रहता, क्योंकि उसने तो संसार का त्याग कर दिया है, तो मानसिक रूप से चिन्तन और प्रतीकों के द्वारा वह उपासना करता है। इस मानसिक उपासना की पद्धति का वर्णन आरण्यक में हुआ

है। उपनिषद में उपासना से भी ऊपर, आत्मा पर चिन्तन, जीवन के शाश्वत प्रश्नों पर चिन्तन किया गया है – मैं क्या हूँ? जगत क्या है? जगत का कारण क्या है? उस जगत-कारण के साथ मेरा सम्बन्ध क्या है? जीवन और जगत के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रश्न जो मनुष्य के मन में उठा करते हैं, उन प्रश्नों को उठाकर उनका समाधान किया गया है। एक-एक उपनिषद की प्रणाली अलग-अलग है। यह उपनिषद भाग है।

एक ऐसा समय था, जब वेदों का कर्मकाण्ड बहुत प्रबल था। कर्मकाण्डी उस परमतत्त्व को नहीं मानता है। कर्मकाण्डी के लिए एकमात्र मान्य है कर्म करना और कर्म के माध्यम से इस जीवन में भौतिक सुख प्राप्त करना तथा मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग में जाकर सुखों की उपलब्धि करना। कर्मकाण्ड का लक्ष्य है, हमारा जीवन इस प्रकार का हो, जिससे हम देवताओं को सुखी कर सकें, उन्हें प्रसन्न कर सकें। देवता प्रसन्न होकर हमें पर्याप्त आनन्द दें, संपदा दें, रोग इत्यादि से हमारी रक्षा करें। हम भौतिक सुखों के अधिकारी बनें और मृत्यु के बाद देव-लोक में जाकर निवास करने की पात्रता अर्जित कर लें। देवलोक की कल्पना की गयी। संसार के सारे सुखों को दुख से अलग कर दिया जाय, यह कल्पना है देवलोक की, जहाँ पर केवल सुख ही सुख है, दुख का लेश भी नहीं है। इस संसार में सुख के साथ दुख भी रहता है। वास्तव में देखें, तो मनुष्य के जीवन में सुख की तुलना में दुख का अंश कुछ अधिक ही रहता है। स्वर्ग में संसार के दुख हैं ही नहीं, केवल सुख ही सुख है। इस सुख को पाने के लिए देवता की प्रसन्नता अभीष्ट है, उसके लिए यज्ञ इत्यादि करना है। यहाँ यज्ञ की परम्परा शुरू होती है। कैसे शुरू होती है? इसका भी लम्बा इतिहास है। उस इतिहास में जाने का समय भी नहीं, प्रयोजन भी नहीं कि यज्ञ कैसे शुरू हुए? कैसे मनुष्य के मन में ऐसा आया कि मैं यज्ञ में आहुतियाँ प्रदान करूँगा, धूम के रूप में वे आहुतियाँ ऊपर उठेंगी और जाकर के जिस देवता के निमित्त मैंने आहुतियाँ दी हैं, उस देवता तक वे आहुतियाँ पहुँच जायेंगी। उन आहुतियों को पाकर देवता प्रसन्न होंगे और मुझ पर प्रसन्न होकर वरदान देगें, जिससे मेरा जीवन सुखी हो। यह कर्मकाण्ड का प्रारम्भ और उसकी नींव है। **(क्रमशः)**

चमत्कारों को मिथ्या मानो, ईश्वर की गरिमा पहचानो

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

महाराष्ट्र में ज्ञान की धारा बहानेवाले संत ज्ञानेश्वर अपने भाइयों सोपान देव और निवृत्तिनाथ तथा बहन मुक्ताबाई के साथ काशी गए। वहाँ उन्होंने एक शिवजी के मंदिर में निवास किया। काशी के कुछ पंडे उनसे मिलने आये। क्योंकि उन लोगों ने बालक ज्ञानेश्वर द्वारा आलंदी में भैसे के मुँह से वेद की ऋचाएँ सस्वर उच्चारित कराने तथा जिस दीवार पर वे भाई-बहन बैठे थे, उसे सचल कराने सम्बन्धी घटनाएँ सुनी थीं। किन्तु उन्हें इन चमत्कारों पर विश्वास नहीं हुआ था। इसलिए उनकी परीक्षा लेने के लिये वे लोग ज्ञानेश्वरजी से मिलने मंदिर पहुँचे। उन्होंने ज्ञानेश्वर से कहा, ''तुम चमत्कार दिखाकर लोगों को भ्रमित करते हो। हम सच्चाई जानने आए हैं। वे लोग साथ में हरी घास की गठरी लाए थे। उसे मंदिर में स्थित शिवजी के वाहन नंदी बैल की मूर्ति के पास रखते हुए कहा, 'यदि इस मूर्ति को घास खिलाकर दिखाओगे, तब हमें तुम्हारे चमत्कारों और संतत्व पर विश्वास होगा।''

ज्ञानेश्वरजी ने कहा, ''चमत्कार ईश्वर-भक्ति का प्रमाण नहीं होते। आप जैसे दम्भी लोगों के उकसाने के कारण मुझे भैसे से वेद-श्रवण और दीवार को सचल करने हेतु विवश होना पड़ा। कर्ता मैं नहीं भगवान हैं, उनके लिए कोई कार्य कठिन नहीं है। मैं भी भगवान से प्रार्थना करूँगा कि वे आपकी इच्छा पूरी करें।'' उन्होंने भगवान शंकर की प्रतिमा को ज्योंही साष्टांग प्रणाम किया, त्योंही नंदी बैल की मूर्ति मुँह फेरकर सारा घास खा गई।

पंडों ने कहा, ''आप धन्य हैं ! आपने मूर्ति को घास खिलाकर हमारा दंभ चूर्ण कर दिया। आप पर संशय करने हेतु हम लज्जित हैं। उन्होंने चारों बालकों को दंडवत किया। फिर साथ में लाई हुई पगड़ी को उन्होंने ज्ञानेश्वर के सिर पर पहना दी। ज्ञानेश्वरजी के चित्रों में उनके सिर पर दिखती पगड़ी पंडों द्वारा पहनाई हुई पगड़ी की ही प्रतिकृति है।

सिद्धियाँ या चमत्कार शक्ति-प्रदर्शन नहीं, ईश्वर के कृपा-प्रसाद हैं। संसार के नियन्ता सर्वसमर्थ परमात्मा हैं। भक्तों की कामना-पूर्ति के लिए कृपानिधान परमात्मा असम्भव कार्यों को भी सम्भव कर देते हैं। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (२५)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के दैवासुर-सम्पद्‌विभाग-योग अध्याय में एक श्लोक कहा गया है –

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।

भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।१६/३।।

यह नातिमानिता क्या है?

महाराज – दम्भ, आत्मसंभरिता को अतिमानिता कहते हैं। उसका अभाव नातिमानिता है।

– अतिमानिता का अति नहीं रहेगा, मानिता रहेगा। अर्थात् अधिक अहंकार नहीं रहेगा, कम रहेगा, ऐसा ही है क्या महाराज?

महाराज – दम्भ नहीं रहेगा। तर्क करते समय हमलोग सोचते हैं, मैं जो बोल रहा हूँ, वही ठीक है, दूसरे लोग जो कह रहे हैं, वह गलत है।

– तब वह कैसा होगा महाराज?

महाराज – विनम्र होगा।

प्रश्न – महाराज ! स्वामीजी को जब सांसारिक अन्नादि के बिना दुख हो रहा था, तब उन्होंने एक दिन आकर ठाकुर से कहा कि वे माँ काली से कुछ व्यवस्था करने के लिये प्रार्थना करें। तब ठाकुर ने कहा, ''तू तो माँ को नहीं मानता है, इसलिये तुम्हें इतना दुख है।'' इस कथन का क्या तात्पर्य है?

महाराज – माँ को मानने से माँ दुख दूर कर देतीं।

– तो क्या स्वामीजी ईश्वर को नहीं मानते थे? उन्होंने तो कहा है, कितना भगवान को पुकारा हूँ।

महाराज – भगवान और माँ क्या एक हैं? भगवान को माँ के रूप में मानने और विश्वास करने से साधक के मातृभाव का विशेष प्रकाश होता है, उनके सन्तान-वात्सल्य की वृद्धि होती है। माँ पुत्र का दुख नहीं देख सकती हैं, वे दुख दूर कर देती हैं। वैसे ही स्वामीजी यदि माँ काली को स्वीकार कर लेते, तो वे उनका कष्ट दूर कर देतीं।

प्रश्न – ठाकुर ने कहा है, मनुष्य अर्थात मन-हुँश – अर्थात् जो सजग है, वह मनुष्य है। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – यह कर्तव्य के सम्बन्ध में सजगता है। अर्थात् मनुष्य जन्म लेकर भगवान की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना ही कर्तव्य है, यही सजगता है।

प्रश्न – श्रीमाँ एक स्थान पर कहती हैं – मन्त्र-तन्त्र कुछ भी नहीं हैं, भक्ति ही सब कुछ है। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – प्रसंग देखकर समझना होगा। अन्यत्र एक स्थान पर (तन्त्र के सम्बन्ध में) माँ ने कहा है, वह सब मानना पड़ता है।

– तब इस कथन का क्या अर्थ हुआ?

महाराज – यहाँ मन्त्र का अर्थ दीक्षा-मन्त्र नहीं है। आचार सम्बन्धी मन्त्र, अर्थात् याग-यज्ञ का मन्त्र है। इस मन्त्र से वास्तव में कोई विशेष लाभ नहीं होगा, अर्थात् भगवान में प्रेम नहीं होगा। भगवान में प्रेम, माने भक्ति ही वास्तविक वस्तु है, यही बात समझाना चाहते हैं।

प्रश्न – ठाकुर ने माँ के सम्बन्ध में कहा है – ''वह सारदा सरस्वती है। ज्ञान प्रदान करने के लिये आई है।'' किन्तु श्रीमाँ की वाणी में तो ज्ञान की बात नहीं मिलती है, जप, भक्ति इत्यादि की बातें मिलती हैं।

महाराज – ज्ञान से क्या समझते हो? क्या उपनिषद का शंकरभाष्य समझते हो? माँ तो ये सब कुछ भी नहीं जानती थीं। थोड़ी पढ़ सकती थीं। ज्ञान का अर्थ है, जिसके द्वारा दिव्यता के आवश्यक वैशिष्ट्य को जाना जा सके। ज्ञान उसका उपाय है, जिससे आत्मोपलब्धि होती है। माँ की वाणी तो उससे परिपूर्ण है।

प्रश्न – महाराज ! ठाकुर ने स्वामीजी को कहा है,

''निर्विकल्प अवस्था से भी ऊँची अवस्था है।'' वह अवस्था क्या है?

महाराज – अपनी समाधि होने के बाद सबको उस समाधि को प्राप्त कराने में सहायता करना। अर्थात् सर्वभूतों में ब्रह्मदर्शन करके उनकी सेवा करना।

प्रश्न – महाराज ! कहा जाता है कि तीर्थक्षेत्रों में एक आध्यात्मिक प्रवाह रहता है। यह आध्यात्मिक प्रवाह क्या है?

महाराज – पहले आधार को ठीक करो, तब समझ सकोगे। स्वयं आध्यात्मिक नहीं होने से आध्यात्मिक प्रवाह बोध नहीं होता। स्थान की महिमा है।

इस प्रसंग में एक बात याद आ गयी। हमलोग जो 'एतत् कर्म श्रीरामकृष्णार्पणमस्तु' कहकर कर्म समर्पण करते हैं, वह क्यों करते हैं, जानते हो? हमलोग इसलिये करते हैं कि उसे सौ गुना, हजार गुना वापस पायेंगे। यह ठीक धान रोपने जैसा है। एक धान रोपने से हजार धान मिलता है। वैसे ही भगवान को कर्म समर्पण करने से सहस्र गुना वापस पायेंगे। नहीं तो, हमने इतना परिश्रम से अर्जित किया और उसे दे दूँगा?

– कौन-सा कर्म वापस मिलेगा अच्छा या बुरा?

महाराज – तुम जो दोगे, उसे ही वापस पाओगे। बुरा देने से बुरा, अच्छा देने से अच्छा पाओगे।

प्रश्न – महाराज ! स्वामीजी ने कहा है, ''मनुष्य में विद्यमान अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति शिक्षा है।'' और ''मनुष्य में विद्यमान दिव्यता की अभिव्यक्ति ही धर्म है।'' इस पूर्णता और अभिव्यक्ति का क्या अर्थ है?

महाराज – जगत में व्यावहारिक क्षेत्र में चौकस व्यक्ति को पूर्णता कहते हैं और आध्यात्मिक जगत में दिव्यता कहते हैं।

– क्या दोनों के लिये समान एकाग्रता की आवश्यकता है?

महाराज – हाँ, आवश्यकता है।

– तब तो, सांसारिक क्षेत्र में एकाग्रचित्त व्यक्ति आध्यात्मिक जगत में उन्नत हो सकता है। अर्थात् जागतिक विषय में एकाग्र मन आध्यात्मिक विषय में भी एकाग्र हो सकता है।

महाराज – नहीं। जागतिक विषय में एकाग्र व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं भी हो सकता है। जैसे, कोई बड़ा चिकित्सक आध्यात्मिक नहीं भी हो सकता है।

– क्यों नहीं होता है महाराज?

महाराज – नहीं होने का कारण है कि जागतिक विषय में एकाग्रता के लिये पवित्रता की आवश्यकता नहीं है, किन्तु आध्यात्मिक विषय में पवित्रता की नितान्त आवश्यकता है।

– तब क्या चिकित्सक जैसे लोगों का आध्यात्मिक विषय में एकाग्र होना सम्भव नहीं है?

महाराज – अभ्यास और पवित्रता के द्वारा सम्भव है। यहाँ तक कि सांसारिक विषय में मन ऐसा एकाग्र होता है कि जगत का बोध नहीं रहता। वैज्ञानिक आचार्य जगदीशचन्द्र बोस के सम्बन्ध में सुना है – वे कहीं बैठकर विज्ञान से सम्बन्धित किसी विषय पर चिन्तन कर रहे थे। उनके पास एक छात्र गया। किन्तु वे इतने तन्मय हो गये थे कि उन्हें उसके आने का बोध ही नहीं हुआ। बाद में सामान्य होने पर उसे देखकर उन्होंने पूछा – तुम कब आये? हाँ, विज्ञान के विषय में एकाग्र होने पर भी वे आध्यात्मिक होंगे, ऐसी कोई बात नहीं है। **(क्रमशः)**

ऐसा विश्व बनाएँगे

तारादत्त जोशी

अध्यापक, रा. इ. कॉलेज, उत्तराखण्ड

अरुण देश के तरुण निवासी, बालवृन्द हम भारतवासी,
सत्य अहिंसा और प्रेम को जगती में फैलायेंगे ।
मानवता ही परम धर्म हो, परसेवा ही परमकर्म हो,
भरा रहे जो प्रेमभाव से, ऐसा विश्व बनाएँगे ।।

जहाँ न कोई भूखा प्यासा, जहाँ न होगी कभी निराशा,
जहाँ न होगा तेरा मेरा, सबका होगा एक बसेरा ।
ज्ञान ज्योति से जहाँ लगेगी, स्याह शर्वरी सदा सवेरा,
भरा रहे जो भ्रातृभाव से, ऐसा विश्व बनायेंगे ।।

जहाँ न बचपन बोझा ढोये, जहाँ बुढ़ापा कभी न रोये,
कली कोख में ना मुरझाये, यौवन हर पल खिलता जाये ।
सभी सुखी हों, सभी निरापद, रोग-व्याधि भय कभी न आये,
भरा रहे जो समरसता से, ऐसा विश्व बनायेंगे ।।

भाँति-भाँति के कुसुमों की, अनुपम होगी क्यारी एक,
बहुरंगी इन सुमनों का रखवाला भी माली एक ।
मानवता का रंग चढ़ा, गुलदस्ता एक बनायेंगे,
जो जाति, धर्म से ऊपर हो, ऐसा विश्व बनायेंगे ।।

महर्षि कर्वे

महर्षि कर्वे का जन्म १८ अप्रैल, १८५८ में महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले के मुरुड नामक गाँव में हुआ था। उनका पूरा नाम धोंडो केशव कर्वे था । उनके माता-पिता बड़े शान्त स्वभाव के थे। उनके नाम के आगे जो धोंडो है, इसके पीछे एक मान्यता है। मराठी में 'धोंडू' शब्द का अर्थ पत्थर होता है । उस समय ऐसी मान्यता थी कि यदि नवजात शिशु के बचने की सम्भावना कम हो, तो उसे तुच्छ नाम देने से वह बच जाता है। बच्चे की लम्बी उम्र के लिए उनके माता-पिता ने उनका नाम रखा था 'धोंडू'। वे तथाकथित पत्थर आगे जाकर भारत रत्न बन गए। उन्हें अण्णासाहब के नाम से भी जाना जाता था ।

बचपन से ही अण्णासाहब दुबले-पतले थे। उनकी वाणी बहुत ही मधुर थी। वे गाँव के लोगों को सुमधुर वाणी में कथा सुनाते। आज से १००-१५० साल पहले गाँवों में आज की तरह शिक्षा सुलभ नहीं थी। संयोगवश अण्णासाहब को एक अच्छे गुरु मिल गए, उनका नाम था सोमण गुरुजी। उनके संरक्षण में अण्णासाहब ने संस्कृत के अमर कोश, रघुवंश आदि के महत्त्वपूर्ण अंश कण्ठस्थ कर लिए थे।

बच्चों का आँगन

एक रोमांचकारी घटना से अण्णासाहब के जीवन से पता लगता है कि उनमें कितना साहस और मनोबल था। उस समय गाँव में प्राईमरी की अन्तिम परीक्षा देने के लिए विद्यार्थी को सत्रह वर्ष की आयु पूर्ण करनी पड़ती थी। सत्रह वर्ष की अवस्था में अण्णासाहब ने वह परीक्षा देने का निश्चय किया। हर जिले में परीक्षा का एक केन्द्र होता था। वे रत्नागिरि में परीक्षा देना चाहते थे। किन्तु कुछ कारणों से वे वहाँ परीक्षा के लिए न जा सके। उनके लिए निकट परीक्षा-केन्द्र सातारा था, जो उनके गाँव से १७७ कि.मी. था।। परीक्षा प्रारम्भ होने में केवल चार दिन बाकी थे। उस समय आज-कल की तरह बस-गाड़ी कुछ नहीं थे। पूरा रास्ता पैदल ही चलना था। अण्णासाहब के जीवन में बचपन से ही अदम्य उत्साह था। उनके उत्साह को देखकर तीन-चार और विद्यार्थी भी उनके साथ चलने के लिए तैयार हो गए। उनके एक और मित्र को परीक्षा देनी थी, वह भी इनके साहस और उत्कट इच्छा को देखकर उनके साथ हो गए।

पहले दिन अण्णासाहब की टोली ने लगभग १६ कि.मी. की यात्रा कर अपने पहचान वाले एक फौजदार के यहाँ रात गुजारी। अगले दिन उन्हीं साहब ने सामान लादने के लिए उनको अपना एक घोड़ा दे दिया। मार्ग में जंगल, घाटियाँ, पहाड़ आदि पार कर वे एक गाँव में पहुँचे। बड़ी कठिनाई से ये बाल-सैनिक लगातार तीन दिन तक चलकर सुबह ११ बजे एक गाँव पहुँचे। अगले दिन सबेरे दस बजे तक परीक्षा-केन्द्र तक पहुँचना आवश्यक था। उनको और लगभग ५८ कि.मी का मार्ग तय करना था। एक ग्रामवासी ने उन्हें कहा कि सीधे रास्ते के बदले पगडण्डी से जाने पर लगभग १९ कि.मी. बच जाएँगे। तुरन्त बाल-सैनिक पगडण्डी मार्ग से जाने को तैयार हो गए।

पाँच-छः कि.मी. वे आगे बढ़े होंगे कि घोड़ा रुक गया । बहुत प्रयत्न करने के बाद भी घोड़े को वे आगे चला नहीं पा रहे थे । बेचारे बच्चे मुश्किल में पड़ गए। चारों ओर घोर अँधेरा। घोड़े को वहीं छोड़कर वे पगडण्डी से आगे बढ़ गए। पगडण्डी की एक तरफ खाई थी तो दूसरे तरफ पहाड़। किन्तु किसी की भी परवाह किए बिना पाँचों साहसपूर्वक आगे बढ़ते जा रहे थे ।

यहाँ-वहाँ थोड़ा विश्राम कर ठण्ड से ठिठुरते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। सातारा उन्हें १०-११ बजे पहुँचना था, किन्तु वे पहुँचे शाम के पाँच बजे। बेचारों के हाथ-पाँव फूल गए थे। पूछताछ करने पर पता लगा कि किसी कारण आज परीक्षा नहीं हुई, कल से शुरू होगी । यात्रा की कठिनाइयों को इस खबर ने मानो एक क्षण में भुला दिया। परीक्षकों ने जब उनकी साहसिक यात्रा की कहानी सुनी, तो उनको परीक्षा में बैठने की अनुमति दे दी।

किन्तु अण्णासाहब को यहाँ एक कठिनाई का सामना करना पड़ा । वे दिखने में बहुत दुबले-पतले थे । परीक्षक ने उनसे पूछा, 'तुम्हारी उम्र क्या है?' उन्होंने कहा, 'अठारह साल पूरे।' परीक्षक को विश्वास नहीं हुआ, उन्होंने कहा, 'तुम

शेष भाग पृष्ठ ३७ पर

दूसरों की देखा-देखी

स्वामी मेधजानन्द

एक सीधे-साधे परिवार के युवक को महानगरी में नौकरी मिली। महानगरी, जिसे आजकल हम मेट्रोपोलिस कहते हैं। स्वाभाविक है कि पूरे घर में आनन्द का वातावरण था, किन्तु थोड़ी चिन्ता भी थी। इतना बड़ा शहर, वहाँ का अलग रहन-सहन, नए लोगों के साथ उठना-बैठना! बेचारी माँ तो चिन्ता के मारे सूख रही थी कि कैसे उसका बेटा वहाँ रह पाएगा। विदाई के समय उसने बेटे से कहा, ''देख, बड़े शहर जा रहा है, वहाँ के लोगों को देखकर उनके तौर-तरीके सीख लेना।'' पिता ने अपने बेटे को एक महत्त्वपूर्ण बात कही, ''बेटा, जो ठीक लगे वह करना, किन्तु एक बात का ध्यान रखना कि दूसरों की देखा-देखी में अपने चरित्र को मत गँवा बैठना।''

सचमुच में बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है यह । बहुत बार हम लोग दूसरों की बाहरी चमक-दमक को देखकर मोहित हो जाते हैं और उसे ही सत्य समझने लगते हैं। हम उनका अन्धानुकरण करने लगते हैं और पथभ्रष्ट हो जाते हैं। ये समस्याएँ युवावस्था में अधिक आती हैं। ऐसा कब और क्यों होता है? दो परिस्थितियों में व्यक्ति बहुत बार अपना विवेक खो बैठता है, एक है महत्त्वाकांक्षा और दूसरी है निराशा। महत्त्वाकांक्षा के साथ यदि विवेक, नैतिकता, सत्य रहे, तो व्यक्ति अपना, परिवार, समाज और देश का कल्याण करता है। हम लोग शीघ्रातिशीघ्र सफल, सुखी और धनवान होना चाहते हैं। इस जल्दबाजी में हम भूल जाते हैं कि हम जो कर रहे हैं, वह सही है अथवा गलत? निराशा में भी हम निर्बल हो जाते हैं और दूसरों की निरर्थक बातों को मानने लगते हैं ।

अनुकरण और अनुसरण – इन दोनों शब्दों को ठीक-ठीक समझना चाहिए। कॉलेज में यदि कोई छात्र बहुत महँगे कपड़े पहनता है, नशा करता है, किन्तु जैसे-तैसे पास हो जाता है, तो उसका अनुकरण अन्य छात्र भी करते हैं। हमें यह देखना है कि ऐसा करने से क्या हम अपने आदर्श से फिसल तो नहीं रहे हैं? क्या इसे जानने का कोई मापदण्ड है कि हम किसका अनुसरण करें और किसका नहीं? हाँ, स्वामी विवेकानन्द इसकी कसौटी बताते हैं, ''जो कुछ भी तुम्हें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाए, उसे विष की भाँति त्याग दो, उसमें जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी भी सत्य नहीं हो सकता।'' इसके विपरीत यदि किसी व्यक्ति में सचमुच महान गुण हैं, तो उसका अनुसरण करने का भी हमें प्रयास करना है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, ''श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करते हैं, अन्य लोग भी वैसे ही आचरण करते हैं, वह जो कुछ प्रमाणित कर देते हैं, लोग उसीके अनुसार बरतते हैं ।'' इस प्रकार अपने भीतर जो अच्छे गुण हैं, उन्हें सुरक्षित रखते हुए, दूसरों के भी अच्छे गुणों को आत्मसात् करने का प्रयास करना चाहिए।

छोटे बच्चों में खेलते समय यदि कोई नया खिलौना लेकर आता है, तो

उसे देखकर दूसरे बच्चे भी उस खिलौने को प्राप्त करने की जिद करते हैं। यही प्रवृत्ति किसी-न-किसी प्रकार से भविष्य में विकसित होती है। पड़ोस में कोई नयी कार खरीदता है, तो हमें लगता है कि हम उससे भी अच्छी कार खरीदें। यहाँ हमें यह देखना है कि क्या सचमुच हमें उस वस्तु की आवश्यकता है अथवा क्या उसे खरीदने का हममें सामर्थ्य है? जब वह वस्तु नहीं थी, तब हम सुख से थे, किन्तु जब हमने अपनी तुलना दूसरे व्यक्ति की, उस वस्तु से की, तो हम अपनी शान्ति गँवा बैठे।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''अनुकरण, कायर की तरह अनुकरण करके कोई उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता । वह तो मनुष्य के अध:पतन का लक्षण है । ...याद रहे, किसी का अनुकरण कदापि न करो । कदापि नहीं । जब तुम दूसरों के विचारों का अनुकरण करते हो, तो अपनी स्वाधीनता गँवा बैठते हो । यहाँ तक कि आध्यात्मिक विषय में भी यदि दूसरों के आज्ञाधीन होकर कार्य करोगे, तो अपनी सारी शक्ति, यहाँ तक कि विचार की शक्ति भी खो बैठोगे । अपने स्वयं के प्रयत्नों के द्वारा अपने अन्दर की शक्तियों का विकास करो । पर देखो, दूसरों का अनुकरण न करो । हाँ, दूसरों के पास जो कुछ अच्छाई हो, उसे अवश्य ग्रहण करो । हमें दूसरों से अवश्य सीखना होगा । ... दूसरों से उत्तम बातें सीखकर उन्नत बनो । जो सीखना नहीं चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है ।''

मन को एक प्रहरी के समान बनाना होगा। जिस प्रकार द्वार पर खड़ा प्रहरी अवांछनीय लोगों को प्रवेश करने नहीं देता, किन्तु अच्छे-भले लोगों को सहर्ष प्रवेश की अनुमति देता है, उसी प्रकार हमें भी दूसरों के अच्छे गुणों को आत्मसात् करना होगा और प्रतिकूल विषयों का प्रवेश निषेध करना होगा। ○○○

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (२५)

स्वामी भास्करानन्द

अनुवाद : ब्र. चिदात्मचैतन्य

स्वामी भूतेशानन्द महाराज के विषय में कुछ संस्मरण

स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज (१९०१-१९९८) के विषय में मेरे मन में प्रारम्भिक स्मृति है – मुण्डित मस्तक, श्याम वर्ण एक तीस वर्षीय संन्यासी। वे साधारण गेरुआ वस्त्र और उसी रंग का ही कपड़े का जूता पहनते थे। मैं कभी-कभी उन्हें साईकिल से शिलाँग के पहाड़ी मार्गों पर आते-जाते देखता था। सामान्यत: वे चिन्तनशील और कुछ गम्भीर दिखते थे, लेकिन उनके चेहरे पर एक हृदयस्पर्शी मुसकान रहती थी। वे जब युवक थे, तभी से शिलाँग की रामकृष्ण-भक्त मण्डली उनका बहुत सम्मान करती थी। भक्त लोग उन्हें 'विजय महाराज' के नाम से जानते थे।

जब मैं सात वर्ष का था, तब एक दिन प्रात:काल डॉ. मनोरंजन गोस्वामी के होमियोपैथिक दवाखाना में गया। डॉ. गोस्वामी हमारे निकटस्थ सम्बन्धी थे और उनका औषधालय हमारे घर से कुछ ही दूरी पर था। हम लोग उनको बहुत पसन्द करते थे। मैं उनके औषधालय में प्राय: उनसे मिलने जाता था। उस दिन सुबह में जब मैं औषधालय में बैठा था, तब मैंने देखा कि स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज अपनी मोटरसाईकल से वहाँ पर आये। वे मोटरसाईकिल से उतकर औषधालय में गये। महाराज को प्रणाम कर डॉ. गोस्वामी ने पूछा, ''विजय महाराज, क्या समाचार है? आज सुबह कैसे आपका आगमन हुआ?''

भूतेशानन्द महाराज ने उत्तर दिया, ''एक निमन्त्रण देने!'' डॉ. गोस्वामी बहुत ही आश्चर्यचकित हुए। वे आश्रम के हितैषी और सहयोगी थे। वे जानते थे कि आश्रम के जिस कार्यक्रम में भक्तों को निमन्त्रित किया जाता है, वह पहले ही समाप्त हो चुका है। साधारणत: ऐसे निमन्त्रण पत्र द्वारा आते हैं। महाराज व्यक्तिगत रूप से आकर भक्तों को निमन्त्रण नहीं देते। अत: उन्होंने कहा, ''क्या आश्रम में किसी नये कार्यक्रम का निमन्त्रण है? मैं तो वार्षिकोत्सव समाप्त हो गया, सोच रहा था।''

भूतेशानन्द महाराज ने मुस्कुराकर कहा, ''नहीं, मैं वैसे निमन्त्रण की बात नहीं कह रहा हूँ, मैं तो स्वयं को ही आपके घर दोपहर के भोजन के लिए निमन्त्रण देने आया हूँ!''

डॉ. गोस्वामी ने अविलम्ब हाथ जोड़कर प्रणाम किया और प्रसन्नता से भूतेशानन्दजी से कहा, ''आप जब चाहें कभी भी मेरे घर आ सकते हैं, इसे मैं अपना महान सौभाग्य मानूँगा। मैं कब आपको अपने घर भोजन हेतु निमन्त्रित कर सकता हूँ?''

भूतेशानन्द महाराज ने कहा, ''हमारे एक संन्यासी आश्रम में भ्रमण हेतु आए हैं। मैं यह नहीं जानता हूँ कि आपको यह ज्ञात है कि नहीं कि हमारे आश्रम का भोजन अति सामान्य है। मैं तो उस भोजन से सन्तुष्ट हूँ, लेकिन मैंने यह सोचा कि यह अच्छा होता कि कम-से-कम एक बार अपने अतिथि को अच्छा भोजन खिलाते। क्या यदि हम कल आएँ, तो ठीक होगा?

डॉ. गोस्वामी ने कहा कि ठीक है। स्वामी भूतेशानन्द और अतिथि संन्यासी ने अगले दिन डॉ. गोस्वामी के घर आकर भोजन किया। डॉक्टर ने भव्य-भोज का प्रबन्ध किया था।

स्वामी भूतेशानन्द महाराज १९३६ से १९४५ तक शिलाँग आश्रम के अध्यक्ष थे। इन वर्षों में महाराज के परिश्रम से आश्रम की वित्तीय अवस्था कुछ अच्छी हो गयी, किन्तु वहाँ के साधुओं के भोजन की व्यवस्था वैसी ही रही। एक छोटा सुन्दर मन्दिर निर्मित हुआ, निर्धन विद्यार्थियों के लिए एक छोटा छात्रावास बना और भक्तों की संख्या भी बढ़ गयी। मुझे स्मरण है, वे श्रीमद्भागवतम् और अन्य शास्त्रों पर प्रवचन देते थे। उन्हें १९४५ में शिलाँग आश्रम से राजकोट आश्रम का अध्यक्ष नियुक्त कर भेजा गया। उन्होंने वहाँ २१ वर्षों तक सेवा की। १९६६ में उन्हें बेलूड़ मठ प्रधान कार्यालय में सह-महासचिव नियुक्त किया गया। वहाँ कार्यरत कनिष्ठ संन्यासियों में मैं भी एक था। मैं इतने वर्षों बाद उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न था।

हमलोग जानते थे कि स्वामी भूतेशानन्द जी श्रीरामकृष्ण के शिष्य स्वामी सारदानन्द जी महाराज के शिष्य थे। स्वामी सारदानन्द अपने असाधारण शान्त एवं स्थिर स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थे। वे किसी प्रकार भी उद्विग्न या उत्तेजित नहीं होते थे। एक बार स्वामी विवेकानन्द ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था, ''उसका मस्तिष्क बहुत ठण्डा है, वह कभी भी क्रोधित नहीं होता।'' लगता है, स्वामी भूतेशानन्द जी को यह विलक्षण गुण उत्तराधिकार में अपने गुरु से मिला था।

एक बार रामकृष्ण मिशन द्वारा बिहार राज्य में सूखा राहत-कार्य हो रहा था। भूतेशानन्द महाराज को सूचना मिली

कि राहत-कार्य के प्रभारी संन्यासी बेलूड़ मठ के निर्देशों का ठीक से पालन नहीं कर रहे हैं, इसलिए उन्हें आकर भेंट करने के लिए कहा। प्रभारी कर्मकुशल थे, लेकिन अहंकारी थे। जब वे भूतेशानन्दजी से भेंट करने आये, तो गुस्सा होकर महाराज पर चिल्लाते हुये उन्हें अपमानित करने लगे। हम सभी प्रभारी के व्यवहार से चकित थे। लेकिन स्वामी भूतेशानन्द जी पूर्ण रूप से शान्त, अनुद्विग्न बने रहे। एक कनिष्ठ संन्यासी के वैसे व्यवहार पर अनुशासनिक कार्रवाई हो सकती थी, लेकिन भूतेशानन्द जी ने शान्ति से इस घटना की उपेक्षा कर दी। अपने स्वभाव के अनुसार वे उस संन्यासी को पूर्ववत् भ्रातृप्रेम एवं स्नेह देते रहे। बिहार राहत-शिविर में वापस जाने के बाद उन संन्यासी ने बेलूड़ मठ के निर्देशानुसार कार्य किया, लेकिन दो या तीन वर्षों के पश्चात् वे स्वयं ही संघ छोड़कर चले गये।

स्वामी भूतेशानन्द जी के संघाध्यक्ष होने के बाद मैं सियटल (अमेरिका) से कई बार भारत आया था। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था, ''मेरा दृष्टिकोण क्या है, तुम जानते हो, मैं सबको आत्म-समाहित करना चाहता हूँ। मैं किसी को भी बाहर नहीं छोड़ना चाहता।'' वे सबको अपने नि:स्वार्थ मातृप्रेम की परिधि में लेना चाहते थे।

मैंने पहले ही कहा है कि भूतेशानन्दजी मुझे शिलाँग में बचपन से जानते थे। एक बार मैं भारत की यात्रा पर आया और उनसे मिलने बेलूड़ मठ गया। उस समय मेरी आयु साठ वर्ष की होगी। जब मैंने उन्हें झुककर प्रणाम किया, तो उन्होंने मेरे सिर के श्वेत केशों को बहुत ही स्नेह के साथ सहलाया और अन्य संन्यासियों से मुस्कराते हुए कहा, ''इसे देखो ! मैं इसको तब से जानता हूँ, जब यह हाफ पैन्ट पहनने वाला बालक था। अभी इसके केश सफेद हो गये !''

एक दिन एक साधु ने उनसे कहा, ''हम लोगों की यह अपेक्षा है कि आप कम-से-कम १०० वर्षों तक जीवित रहें।''

भूतेशानन्द महाराज ने अविलम्ब उत्तर दिया, ''सच कहता हूँ, मुझे अपनी आयु का बोध नहीं रहता।'' वे उस समय ९४ वर्ष के थे। उन्हें क्यों आयु-बोध रहना चाहिए? जब किसी ने अपने हृदय और आत्मा को ईश्वर की सेवा में लगा दिया, उसे इन तुच्छ वस्तुओं में रुचि लेने के लिए समय कहाँ!

स्वामी भूतेशानन्द जी का संस्कृत भाषा पर अद्भुत अधिकार था। उनके पूर्व स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज संघाध्यक्ष थे, वे अपनी विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध थे। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं और उपनिषदों जैसे अनेक कठिन संस्कृत शास्त्र का अंग्रजी और बँगला भाषा में अनुवाद किया। अनेकों बार मैंने उन्हें अनुवाद करते समय मूल कठिन संस्कृत के अर्थ को भूतेशानन्दजी से परामर्श लेते हुए देखा था। भूतेशानन्द जी अंग्रेजी, बँगला और गुजराती भी अच्छी तरह जानते थे।

इतने महान विद्वान होते हुये भी उनमें ऐसी विनम्रता थी कि उन्होंने स्वप्रेरित होकर एक भी पुस्तक नहीं लिखीं। लेकिन कई वर्षों तक उन्होंने धर्म-ग्रन्थों पर बँगला एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में बहुत से गम्भीर आध्यात्मिक प्रवचन दिये। उनमें से बहुत-से प्रवचनों को कुछ लोगों ने लिपिबद्ध किया और बाद में वे पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इतने उच्च कोटि के विद्वान होते हुये भी स्वामी भूतेशानन्द जी विद्वत्ताभिमान से मुक्त थे।

कुछ संन्यासी संगठनों में जो उत्तराधिकार पद होता है, वैसा रामकृष्ण संघ में नहीं हैं। संन्यासी में विद्यमान आध्यात्मिक गुण ही उसे आदरणीय बनाते हैं । रामकृष्ण संघ में उच्च प्रशासनिक पद का अर्थ सम्मान का वर्धन नहीं है। उच्च पद का अर्थ होता है, उच्चतर उत्तरदायित्व को उत्कृष्ट सेवा-भाव से निर्वाह करना। मैं संघ के कम-से-कम तीन संघाध्यक्षों को निकट से जानता हूँ। वे सभी पूर्णत: मिथ्याभिमान रहित थे। उच्च पद उन्हें बिल्कुल भी प्रभावित नहीं कर सका। स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज उनमें से एक थे।

radioactivity को जानने के लिये radioactivity detectors होते हैं, किन्तु सन्त-स्वभाव को जानने के लिए बाजार में कोई सन्त-अभिज्ञापक (saint detectors) यन्त्र नहीं होते। कई लोग चमत्कारी शक्ति को ही एक सन्त का मापदण्ड मानते हैं। वे लोग पूछते हैं ''क्या वे हवा में उड़ सकते हैं? क्या वे रोग ठीक कर सकते हैं? क्या वे भविष्य बता सकते हैं? क्या वे पक्के दीवारों के आर-पार हो सकते हैं? क्या वे सूक्ष्म वायु से वस्तु बना सकते हैं? इत्यादि ।''

एक बार जब मैं ब्राजील की यात्रा पर गया था, तो किसी ने मुझसे पूछा, ''सूक्ष्म वायु से वस्तु बनाने के बारे में आपका क्या विचार है?''

मैंने कहा, ''मेरे विचार से जो व्यक्ति ऐसा करता है, उसके पास उन वस्तुओं को खरीदने के लिए रुपये नहीं हैं।''

मुझे खुशी है कि हम रामकृष्ण संघ के संन्यासी उन चमत्कारी टोली वाले नहीं है। सन्त को उसकी नि:स्वार्थता, सत्यता और सच्चाई के गुणों से आँकना चाहिए। उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से पवित्र होना चाहिए। वह नाम-यश, सत्ता और पद के लिए लालायित न हो। उसका हृदय और बुद्धि दोनों समान विकसित हो। वह प्रेमी, दयालु,

प्रसन्न, बुद्धिमान और आत्मसंयमी हो, साथ ही विनोदप्रिय हो।

यदि इन गुणों को देखा जाए तो यह निश्चित है कि स्वामी भूतेशानन्द जी सन्त-प्रकृति के थे । यदि वे जीवित होते, तो उनकी आध्यात्मिकता का यह मूल्यांकन उनके लिए बड़े संकोच का कारण होता, क्योंकि एक सच्चे विनम्र साधु को अपने सन्तत्व का बोध नहीं होता।

९० वर्ष की आयु में भूतेशानन्दजी की सफल हृदय शल्य-चिकित्सा हुई। शल्योपचार के पश्चात् चिकित्सकों ने उनको सुबह हल्का व्यायाम करने का परामर्श दिया। चिकित्सकों के परामर्शानुसार महाराज सुबह अपने भवन के बरामदे में पन्द्रह-बीस मिनट टहलते थे। उस समय दो संन्यासी सेवक उनके साथ रहते थे। एक दिन प्रात:काल भ्रमण के समय उन्होंने हम लोगों से मुस्कुराते हुए कहा, ''लोग कहते हैं कि मैं रामकृष्ण संघ का संघाध्यक्ष बन गया हूँ। लेकिन मुझे लगता है कि मैं वहीं संन्यासी हूँ, जो साठ वर्ष पहले शिलाँग आश्रम में था। अभी एक ही अन्तर है कि मेरे पास सेवकों का दल है !'' पद के प्रति उदासीनता से उनकी सच्ची नम्रता प्रकट होती है। सच्ची नम्रता का गुण केवल सन्त-प्रकृति के लोगों में ही मिलता है।

उनके व्यक्तित्व की दूसरी विशिष्टता थी, उनकी विनोदप्रियता। जब वे संघाध्यक्ष थे, तब संन्यासीगण प्रतिदिन सुबह नाश्ते के बाद लगभग आधे घण्टे के लिए उनके पास जाते थे। वह समय आध्यात्मिक प्रेरणा और मनोरंजन, दोनों के लिए था। उनको प्रणाम करने के बाद साधुवृन्द उनसे आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित प्रश्न मनोरंजक एवं विनोद शैली में पूछते थे। भूतेशानन्द महाराज का उत्तर भी सदा प्रश्न के जैसा ही मनोरंजक एवं विनोदी होता था, जिससे बारम्बार अट्टहास होता था। उनका विनोद भी आदर्श था, जिससे किसी को अपमानित या दुखित नहीं होना पड़ता था और श्रोताओं को शुद्ध आनन्द मिलता था ।

ईश्वरावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु सच्चे भक्त की दो विशिष्टताएँ बताते थे। वह स्वयं सम्मानलोलुप नहीं होता है, किन्तु सदा दूसरों को सम्मान देने हेतु तत्पर रहता है। स्वामी भूतेशानन्द जी में ये दोनों विशिष्टताएँ थीं।

रामकृष्ण संघ ने १९७४ ई. में मुझे सियटल (अमेरिका) के लिए नियुक्त किया। संयुक्त राज्य अमेरिका जाते समय मैं जापान के जूसी शहर के वेदान्त सोसाइटी में रुका था और वहाँ के प्रथम भवन के उद्घाटन समारोह में सम्मिलित हुआ। इस यात्रा में मुझे सोसाइटी के प्रमुख सदस्यों से भेंट करने का अवसर मिला। दो वर्षों के बाद उन लोगों ने ग्रीष्म ऋतु में एक महीने के लिए सोसाइटी की यात्रा पर आने के लिए मुझे निमन्त्रण भेजा, जिसे मैंने स्वीकार किया । इस यात्रा के बाद उनलोगों ने मुझसे प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में आने का अनुरोध किया। अत: मैं जूसी के वेदान्त सोसायटी में निरन्तर छ: वर्षों तक जाता रहा तथा प्रत्येक यात्रा में चार-पाँच सप्ताह वहाँ रहता था।

उन यात्राओं में वहाँ के सदस्य आश्रम के लिये बृहत भवन के निर्माण हेतु तत्पर हुए। तत्कालीन सचिव श्री वी. एस. नोमा और दूसरों के उत्साहपूर्वक आर्थिक सहयोग से बहुत ही कम समय में यह स्वप्न साकार हो गया। दूसरे भवन का निर्माण मुख्य रूप से भारतीय उद्योगपति स्वर्गीय एच. आर. गजरिया के हार्दिक सहयोग से हुआ, जिनसे मैं जापान में मिला था। मेरे अनुरोध पर उन्होंने भवन-कोष के लिए अमेरीकी डालर १,५०,०००.०० दिए थे। स्वर्गीय श्रीमती हारू नकाई ने भी बड़ी राशि दान दी थी।

परवर्तीकाल में भूतेशानन्दजी भारत से जापान के सोसाइटी की यात्रा पर गये और बहुत से जापानी भक्तों को दीक्षा देकर कृतार्थ किया। अन्त में स्वामी सिद्धार्थानन्द जूसी वेदान्त सोसाइटी में प्रथम संन्यासी के रूप में रहने के लिए आये।

जूसी वेदान्त सोसायटी के प्रारम्भिक विकास में मैंने जो कुछ सहयोग किया, भूतेशानन्दजी उसे कभी नहीं भूले। अपनी भारत यात्रा के दौरान जब मैं उनसे बेलूड़ मठ में भेंट करता था, तो कम-से-कम तीन अवसरों पर उन्होंने वहाँ उपस्थित संन्यासियों से कहा था, ''हमारा जापान का वर्तमान वेदान्त सेन्टर मुख्य रूप से स्वामी भास्करानन्द के प्रयास से बना है।''

यहाँ अपनी आत्मकथा के प्रसंग को उल्लेख करने का उद्देश्य स्वयं को महिमान्वित करना नहीं हैं, बल्कि यह है कि कैसे स्वामी भूतेशानन्द जी, जो सम्मान-प्रशंसा के तनिक भी इच्छुक नहीं थे और दूसरों की प्रशंसा करने हेतु, यहाँ तक कि मेरे जैसे नगण्य संन्यासी के लिये भी सदैव तत्पर रहते थे।

स्वामी भूतेशानन्दजी जैसे महान व्यक्ति सुरभित धूप के समान होते हैं। धूप जलते समय सर्वत्र अपनी आध्यात्मिक सुरभि बिखेर देता है और जल कर राख होने पर भी उसका सौरभ दीर्घ काल तक बना रहता है । स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने अपना भौतिक शरीर त्याग दिया, किन्तु उनके पावन जीवन का आध्यात्मिक सौरभ दीर्घ काल तक लोगों को प्ररित करता रहेगा और उनके जीवन को आध्यात्मिक रूप से पवित्रतर और सार्थक करेगा । **(क्रमश:)**

चित्तशुद्धि के उपाय

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

मैं एक भक्त-सम्मेलन में गया था। उसमें एक प्रश्नोत्तर सत्र होता है। किसी भक्त ने मुझसे कहा, ''चित्तशुद्धि के ऐसे उपाय बताइये, जो गृहस्थों के लिये अभ्यास करना सहज और सम्भव हों।'' मैंने कहा, पहले यह जान लेना आवश्यक है कि चित्त अशुद्ध कैसे होता है। यदि उससे हम बच जाते हैं, तो चित्त अपने आप शुद्ध हो जायेगा। चित्त की अशुद्धि के दो कारण हैं – एक है अहंकार और दूसरा है स्वार्थ। ये दोनों मिलकर वासना का निर्माण करते हैं। वासना सद् और असद् दोनों प्रकार की हो सकती है। चित्त की अशुद्धि अहंकार या कर्ताभाव से ही होती है। तब व्यक्ति सोचता है कि मैं कर्ता हूँ। वह अपने शरीर के साथ तादात्म्य करता है और सोचता है कि मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ। चाहे संन्यासी हो या गृहस्थ, जब अहंकार-भाव, स्वार्थ-भाव उसके मन में आता है, तो चित्त अशुद्ध हो जाता है। गृहस्थों की ऐसी धारणा हो गयी है कि उनका सब कुछ अशुद्ध है और संन्यासियों का शुद्ध है। ऐसा नहीं है, सभी अपने-अपने स्थान पर ठीक हैं। गृहस्थ का गृहस्थ-धर्म गृहस्थी में रहकर उतना ही पवित्र और शुद्ध है, जितना संन्यासी का संन्यास-धर्म है।

दूसरी बात है कि हमलोगों ने शारीरिक स्वच्छता को शुद्धता से जोड़ दिया है। स्नान करना शारीरिक स्वच्छता है। इससे शरीर निर्मल और स्वस्थ रहता है। मन्दिर में जाने के लिये स्नानादि आवश्यक है, किन्तु मानसिक शुद्धता कुछ अलग है। जब स्नान कर मन्दिर दर्शन कर आ रहे थे और रिक्शावाले ने १ रुपये अधिक माँग लिया, तो आप उससे लड़ गये और खरी-खोटी सुना दी। इससे जो चित्त अशुद्ध हुआ, वह तीन-चार बार शैम्पू से स्नान करने के बाद भी नहीं शुद्ध होगा। यदि कोई अस्वस्थ हो, बहुत ठण्ड का स्थान हो, उसे अस्थमा हो, तो बिना नहाये भी मन्दिर चला गया, तो कोई क्षति नहीं, लेकिन वह अपने चित्त को अन्य विकारों से शुद्ध रखे। यदि चित्त में शुद्धि है, तो हमारा शरीर अशुद्ध होकर भी शुद्ध हो जाता है।

तीसरी बात है कि किसी को भी स्वार्थी नही बनना चाहिये। स्वार्थ से चित्त अशुद्ध होता है। अब प्रश्न उठता है कि गृहस्थ को क्या करना चाहिये? गृहस्थ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जितना आवश्यक है, उतना रखे और दूसरों के लिये जीए, दूसरों की सहायता करे, सेवा करे। मन में यह भाव रखे कि हम तो प्रभु के यन्त्र हैं। प्रभु सब कर रहे हैं। सारी चीजें, सारी सम्पत्ति तो प्रभु की है। हमारा कोई स्वामित्व नहीं है। ऐसी भावना विकसित करने से, ऐसा दृष्टिकोण होने से हमारा चित्त अशुद्ध नहीं होगा और हम हमेशा भगवान की छाया में रहेंगे। थोड़ा सोचिये, हमें अहंकार क्यों होना चाहिये? जिसने इस संसार को बनाया, सूर्य और चन्द्रमा को बनाया, पृथ्वी को बनाया, उसी ने आपका और हमारा घर बनाया है। क्या इन्हें सीमेंट, लाइम स्टोन कारखानेवालों ने बनाया है? लाइम स्टोन किसने बनाया? उसी ने बनाया, जिसने सूर्य और चन्द्रमा को बनाया। लाइम स्टोन न हो, तो सीमेंट नहीं बन सकता। रूस और अमेरिका के तकनीकी विशेषज्ञों के संयुक्त सहयोग से भिलाई का कारखाना बना है, जिसमें लोहा बनता है, बैलेडिला से जो रवा पदार्थ निकाला जाता है, उसे किस इंजिनीयर ने बनाया है? उसे प्रकृति ने बनाया है। प्रकृति के स्वामी ईश्वर हैं। इस प्रकार कहीं भी हम स्वामी नहीं हैं, ईश्वर ही स्वामी हैं। तब हमें कर्तृत्व का अहंकार करने का क्या अधिकार है? भगवान सबके स्रष्टा हैं। सारी प्रकृति, सारा जगत हमारे जीवन में सहयोग करता है, तो हमें भी अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर दूसरों का सहयोग करना चाहिये। इस प्रकार के चिन्तन से जब हमारा अहं-भाव चला जायेगा, हमारा स्वामित्व चला जायेगा, हमारा स्वार्थ चला जायेगा, तब मन में किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं होगा, किसी के प्रति कोई कलुषता नहीं होगी, चित्त में कोई अशुद्धि नहीं रहेगी, चित्त में कोई कल्मष नहीं रहेगा। तब चित्त शुद्ध रहेगा।

भगवान का नाम जपने से चित्त शुद्ध एवं शान्त होता है। इसलिये प्रत्येक परिस्थिति में ईश्वरनाम लेते रहें। चित्तशुद्धि का यह सबसे सहज साधन है। इसमें कोई व्रत-उपवास, कर्मकाण्ड नहीं करना है, केवल अपने हृदय को उदार बनाना है। अपनी समझ का विकास करना है। अपनी धारणा को स्पष्ट रखना है। जब चित्त शुद्ध हो जायेगा, तो भगवान का दर्शन होगा, उनकी अनुभूति होगी। ❍❍❍

श्रीमत्सुरेश्वराचार्यविरचिता

नैष्कर्म्यसिद्धिः

(स्वामी धीरेशानन्द जी महाराज रामकृष्ण संघ के संन्यासी थे। उनका जन्म १९०७ में हुआ था। उनकी मंत्र-दीक्षा श्रीमत् स्वामी सारदानन्द जी महाराज से हुई थी तथा संन्यास १९३२ में हुआ था। उन्होंने सारा जीवन तपस्या और शास्त्र-अध्ययन किया तथा वेदान्त पढ़ाया। उन्होंने वेदान्त पर कुछ पुस्तकें लिखीं और योगवाशिष्ठसार, वैराग्यशतकम्, वेदान्त संख्यामालिका, अध्यात्मरामायण आदि कुछ पुस्तकों का बंगला में अनुवाद किया। उन्होंने स्वामी अतुलानन्द जी महाराज के वार्तालाप को लिपिबद्ध किया, जो "Atman alone abides" नाम से प्राप्य है। धीरेशानन्दजी ने वाराणसी के संन्यासियों को नैष्कर्म्यसिद्धि का अध्ययन करवाया था, जिसे वेदान्त केसरी के पूर्व सम्पादक स्वामी ब्रह्मेशानन्द महाराज ने सावधानी से लिख लिया था। उन्हीं नोट्स को महाराज के द्वारा ही पुन: सुसम्पादित कर 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। यह नैष्कर्म्यसिद्धि का अनुवाद नहीं है, अत: पाठकों से निवेदन है कि अधिकृत अनुवाद सहित इन्हें पढ़ें। - सं)

नैष्कर्म्यसिद्धि के प्रणेता भगवान शंकाराचार्य के शिष्य श्री सुरेश्वराचार्य जी हैं। ग्रन्थारम्भ के पूर्व ग्रन्थकार और ग्रन्थ-रचना के कारण की संक्षिप्त जानकारी अपेक्षित है।

सुरेश्वराचार्यजी गृहस्थाश्रम में मंडन मिश्र के नाम से प्रसिद्ध थे और कट्टर कर्मकाण्डी थे। वे वेदान्त को वेद की ऊसर भूमि कहते थे, संन्यासी को भिक्षा तक नहीं देते थे। श्रीमत् शंकराचार्य द्वारा वाद-विवाद में परास्त होने पर उन्होंने उनका शिष्यत्व तथा संन्यास ग्रहण किया और सुरेश्वराचार्य नाम से विख्यात हुए। शंकराचार्य ने जब उन्हें बृहदारण्यक भाष्य पर वार्तिक की रचना करने को कहा, तो शंकराचार्य के अन्य शिष्यों ने यह कहकर आपत्ति की कि ऐसा पूर्व कर्मकाण्डी कैसे वार्तिक लिख सकता है? शिष्यों के मन की इस शंका को दूर करने के लिये शंकराचार्य ने सुरेश्वराचार्य को एक ग्रन्थ लिखने को कहा। सुरेश्वराचार्य ने 'नैष्कर्म्यसिद्धि' नामक ग्रन्थ की रचना की।

अद्वैत वेदान्त के तीन आचार्य

'हरि-हर-चतुरानन-अवतारीभूत: व्यास-शंकर-सुरेश्वररचितं सूत्र-भाष्य-वार्तिकरूपं त्रीश्वरम् अद्वैतशास्त्रं मुमुक्षुभि: सदा सेव्यम्। त्रया: ईश्वरा: कर्तार: यस्य वेदान्तशास्त्रस्य तत् त्रीश्वरम्।' अद्वैत वेदान्त सम्प्रदाय के तीन मुख्य आचार्य माने जाते हैं – वेदव्यास, शंकराचार्य तथा सुरेश्वराचार्य। ये तीनों स्वतन्त्र आचार्य हैं, अर्थात् किसी के अधीन तथा किसी का अनुसरण नहीं करते। इन तीनों ने अपने स्वकीय ग्रंथों में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, परवर्ती आचार्यों ने उसी की पुष्टि की है तथा उनके किसी शब्द-विशेष का अवलम्बन लेकर अपने मतविशेष को स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

प्रथमोक्त तीन आचार्यों ने सभी तीन प्रक्रियाएँ स्वीकार की हैं। 'यया यया प्रक्रियया भवेद् बोध: ...'। अर्वाचीन आचार्यों ने किसी विशेष मत को स्वपक्ष के रूप में स्थापित किया है, यथा भामतीकार ने अवच्छेदवाद, विद्यारण्य ने आभासवाद, सर्वज्ञत्व मुनि विवरणकार ने प्रतिबिम्बवाद, इत्यादि। यही भेद है।

व्यास, शंकर और सुरेश्वर के बीच में 'यथोत्तरमुनीनां प्रामाण्यम्', यह सिद्धान्त है। अर्थात् व्यास और शंकर का मतभेद होने पर शंकर प्रामाण्य हैं और शंकर और सुरेश्वर का मतभेद होने पर सुरेश्वर प्रामाण्य हैं। उदाहरण के लिए : शंकराचार्य ने एकमात्र ब्राह्मण को ही संन्यास का अधिकारी माना है, किन्तु वार्तिककार सुरेश्वर ने त्रैवर्णिक संन्यास का विधान किया है। इस विषय में दंडी संन्यासियों को छोड़कर सुरेश्वराचार्य को ही सब लोग प्रमाण मानते हैं।

नैष्कर्म्यसिद्धि का अर्थ – नैष्कर्म्य अर्थात् मोक्ष – जिसमें मोक्ष का प्रतिपादन हो, वह नैष्कर्म्यसिद्धि है। गीता ३/४ तथा १८/४९वें श्लोकों में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। शांकरभाष्य में लिखा है – **नैष्कर्म्यं निष्कर्मभावं कर्मशून्यतां ज्ञानयोगेननिष्ठां निष्क्रियात्मस्वरूपेण एव अवस्थानं इति।**

नैष्कर्म्यसिद्धिं – निर्गतानि कर्माणि यस्माद् निष्क्रिय-ब्रह्मात्मसंबोधात् स निष्कर्मा, तस्य भावो नैष्कर्म्यं नैष्कर्म्यं च तत् सिद्धि: च सा नैष्कर्म्यसिद्धि:। नैष्कर्म्यस्य वा सिद्धि: निष्क्रियात्मस्वरूपावस्थान-लक्षणस्य सिद्धि: निष्पत्ति:।

अर्थात् जिसके सर्वकर्म निवृत्त हो गये हैं, वह 'निष्कर्मा' है। उसके भाव का नाम 'नैष्कर्म्य' है और निष्कर्मतारूप सिद्धि का नाम 'निष्कर्म्यसिद्धि' है। अथवा निष्क्रिय आत्मस्वरूप से स्थित होनारूप निष्कर्मता का सिद्ध होना ही 'नैष्कर्म्यसिद्धि' है।

ग्रन्थ का प्रारम्भ व सम्बन्ध

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ जगत के दुख को दिखाकर किया गया है, जैसा कि भगवान बुद्ध ने किया था। यथा दुख है, दु:ख का कारण है वासना; वासनाक्षय का उपाय है अष्टांग योग। माँ सारदा ने भी कहा है कि निर्वासना होने पर ही मुक्ति होती है।

जगत की दुखस्वरूपता के बारे में दृढ़ निश्चय हो जाना तथा उससे मुक्ति हेतु सिर पर अग्नि होने पर जैसे छटपटाहट होती है, वैसी होना, इसे सम्यक् दृष्टि कहते हैं। सामान्यत: लोग जगत की दुखस्वरूपता को स्वीकार नहीं करते और थोड़े-से सुख के लिए बहुत-सा दुख स्वीकार करते हैं। यथा, 'कांटे हों, तो भी फूल क्यों न तोड़ूँ'।

प्रथमोऽध्याय:

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तैः सर्वप्राणिभिः सर्वप्रकारस्याऽपि दु:खस्य स्वरसत एव जिहासितत्वात्तन्निवृत्यर्था प्रवृत्तिरस्ति स्वरसत एव। दु:खस्य च देहोपादानैक-हेतुत्वाद्देहस्य च पूर्वोपचित-धर्माधर्ममूलत्वादनुच्छित्तिः। तयोश्च विहितप्रतिषिद्धकर्ममूलत्वादनिवृत्तिः। कर्मणश्च रागद्वेषास्पदत्वाद्, रागद्वेषयोश्च शोभनाशोभनाध्यासनिबन्धनत्वाद् अध्यासस्य चाऽविचारितसिद्धद्वैतवस्तुनिमित्तत्वाद्, द्वैतस्य च शुक्तिकारजतादिवत्सर्वस्यापि स्वत:सिद्धाद्वितीयात्म-अनवबोधमात्रोपादानत्वादव्यावृत्तिः। अत: सर्वानर्थहेतुरात्माऽनवबोध एव।

भावार्थ – ब्रह्मा से लेकर तृण अर्थात् छोटे-से-छोटे कीटादि जीवों में सभी प्रकार के दुखों से मुक्त होने की इच्छा स्वाभाविक ही रहती है, इसलिये दुखनिवृत्ति हेतु उन प्राणियों की चेष्टा भी स्वाभाविक ही होती है।

देह-धारण करना ही दुख का एकमात्र कारण है और देह पूर्वजन्म में संचित धर्म-अधर्म से उत्पन्न होता है, अतएव उनके उच्छेद हुए बिना, धर्म और अधर्म की निवृत्ति हुए बिना, देह का उच्छेद नहीं हो सकता। जब तक विहित एवं प्रतिषिद्ध कर्मों का आचरण होता रहता है, तब तक धर्म-अधर्म की निवृत्ति नहीं हो सकती है। कर्म राग-द्वेषमूलक हैं। राग-द्वेष विषयों में सुन्दरता-असुन्दरता बुद्धि रूप मिथ्या भ्रम से उत्पन्न होते हैं। मिथ्या भ्रान्ति जिसकी सत्ता विचार करने से ही होती है, ऐसे द्वैत वस्तु के कारण होती है और समस्त द्वैत का उपादान कारण शुक्ति में रजत-भ्रम के समान स्वयंप्रकाश अद्वितीय आत्मा का अज्ञान ही है। इसलिये परम्परा से सब अनर्थों का मूल कारण आत्मविषयक अज्ञान ही है। अतएव उसकी निवृत्ति हुये बिना पूर्वोक्त दु:खादि से मुक्ति नहीं मिल सकती है।

व्याख्या – सर्वप्रकारस्य दु:खस्य : आध्यात्मिक (शारीरिक) दुख ओषधि द्वारा दूर होता है; आधिभौतिक अन्य उपायों से और आधिदैविक शान्तिस्वस्त्ययन द्वारा दूर होते हैं। लेकिन आत्यन्तिक दुखनिवृत्ति इन उपायों से संभव नहीं है। स्वरसत : स्वभाव से ही; अर्थात् जिसके लिये शास्त्र अध्ययन आदि की आवश्यकता नहीं है। ऐसे दुख शास्त्रसंस्कारयुक्त और अयुक्त दोनों प्रकार के लोगों में होते हैं। देहोपादान : कार्यकारण संघात लक्षण देह का अहं-मम रूप से ग्रहण अर्थात् अहं-मम अभिमान। किसी दुख का क्षणिक नाश हो भी जाये, पर देह में अहं-ममत्व बने रहने से उसकी पूर्ण निवृत्ति नहीं होती। देह पूर्वकृत् पाप-पुण्य के कारण बनी रहती है। राग-द्वेष आदि क्षणिक होते हुए भी इन सबका मूल कारण अविद्या अनादि है। शोभनाशोभनाध्यास : एक ही वस्तु एक समय शोभन दूसरे समय अशोभन हो जाती है, यह मन के अध्यास के कारण होता है। विषय में रमणीय और अरमणीय बुद्धि कल्पना से होती है और ये गलत सिद्ध होते हैं। स्वत:सिद्ध : अन्य प्रमाणों की जिसमें आवश्यकता नहीं होती। अनवबोध : आवरण और विक्षेप दोनों शक्तियों सहित अज्ञान। अविचारितद्वैत : जो दिखता है, अत: सिद्ध है, पर विचार करने पर असिद्ध हो जाता है। जैसे वैज्ञानिक के विचार से टेबल आदि असिद्ध होकर न्यूट्रान प्रोटॉन बचे रहते हैं। उसी प्रकार वस्तुओं का कारण देखने जाने पर द्वैत नहीं बचता है। अनुच्छित्ति : उच्छेद नहीं। अध्यास : अतस्मिन् तद्बुद्धि – जो वस्तु जैसी नहीं है, उसमें वैसा बोध होना। मात्र : केवल; और कोई कारण नहीं। आत्म विषयक अज्ञान ही सर्वद्वैत का एकमात्र कारण है। अव्यावृत्ति : निवृत्ति नहीं। **(क्रमशः)**

सदैव याद रखो कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी। इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को भी अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी। दूसरों से सहायता की आशा न रखो।

– स्वामी विवेकानन्द

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (१७)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

ईश्वर की शान्ति को छीन लो

बालक जब रोने लगता है तो माँ उसे चॉकलेट पकड़ाकर चली जाती है कि चाकलेट देखकर चुप हो जाएगा, लेकिन बालक चाकलेट फेंक देता है और रोना चालू रखता है। माँ फिर आकर उसके सामने दो-चार खिलौने रख देती है, लेकिन बालक खिलौनों की ओर देखता भी नहीं है और रोता ही रहता है, तब माँ सब काम छोड़कर उसे गोद में उठा लेती है और प्रेम से थपथपाकर चुप करा देती है। जब बालक रो-रोकर माँ को बेचैन कर देता है, माँ की शान्ति छीन लेता है, तब माँ को थककर, ऊबकर उसे चुप कराने के लिये गोद में लेना ही पड़ता है। ठीक, यही युक्ति भगवान के साथ भी अपनानी है। श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी तुरीयानन्दजी कहते हैं, ''ईश्वर से प्रार्थना करते रहना भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। तुम्हें सच्चे अन्त:करण से उसे करना चाहिए। अपनी सतत प्रार्थना से, मानो तुम ईश्वर को अशान्त कर दो।'' अर्थात् जब विपरीत परिस्थिति आये, मनुष्य का मन अशान्त हो जाय, तब टूट जाने, निराश होने के बदले मनुष्य को भगवान को अशान्त और व्यग्र कर देना चाहिए। भगवान से तीव्रतम प्रार्थना द्वारा सतत निवेदन करते ही रहना चाहिए कि भगवान भी माता की तरह रोते बालक को चुप कराने के लिये गोद में उठा लें।

महाभारत की कथा में द्रौपदी के जीवन में जो विपत्ति आई थी, वह विपत्तियों की पराकाष्ठा थी। राज्य की भरी सभा में वृद्ध लोगों की उपस्थिति में राजकुलवधू का चीर खींचा जाय, इससे बढ़कर नारी-जीवन की दुर्दशा और क्या हो सकती है ! उस समय उसने सहायता के लिए सभी वृद्धों, अग्रजों से विनती की, पर किसी ने सहायता नहीं की। अन्त में आर्तभाव से उसने श्रीकृष्ण को पुकारा। यह पुकार इतनी तीव्रतम थी कि श्रीकृष्ण भगवान ने तत्काल आकर उसकी सहायता की थी।

जिन लोगों ने आतुर भाव से पुकार कर भगवान को बेचैन कर दिया, उन्हें भगवान ने अपनी गोद में उठा लिया है। मीरा ने भगवान को तीव्रतम उत्कटता से पुकारा, तो वे श्रीकृष्ण को पा गईं। ऐसा कहा जाता है कि द्वारकाधीश ने मीरा को सदेह अपने में समाहित कर लिया था। चैतन्य महाप्रभु के साथ भी ऐसा ही हुआ था। कृष्ण के विरह में वे पागल हो गये थे। उनकी आँखों के आँसू सूखते ही नहीं थे। वे भगवान जगन्नाथ मंदिर के गरुड़ स्तम्भ के पास घंटो तक खड़े रहकर अनिमेष नेत्रों से जगन्नाथजी की मूर्ति को देखते रहते थे। जिस स्तम्भ को पकड़कर वे खड़े रहते थे, उस स्तम्भ के पत्थर पर उनके हाथ की छाप पड़ गई थी, ऐसा कहा जाता है। कृष्ण-कृष्ण रटते-रटते उनका समग्र जीवन कृष्णमय हो गया था। ऐसा उत्कट भाव हो, तो फिर भगवान आएँगे ही न ! उनके लिए भी कहा जाता है कि भगवान जगन्नाथ ने उन्हें सदेह अपने में समाहित कर लिया था।

''माँ, माँ, आज का दिन भी व्यर्थ गया। तूने आज भी दर्शन नहीं दिया। यह क्षणभंगुर जीवन तो बीता जा रहा है, क्या तू कभी दर्शन नहीं देगी? क्या तू इस दीन बालक पर कृपा नहीं बरसाएगी?'' यह कहकर दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर के छोटे पुजारी धूल में लोटने लगते थे और माँ का दर्शन नहीं होने से तीव्र क्रन्दन करने लगते थे। उनके मुँह पर खरोंचें पड़ जाती थीं, पर उन्हें कुछ होश नहीं रहता था, इसलिए लोग उनको पागल ब्राह्मण कहते थे। ''हे माँ, तू सच में है, या पत्थर की मूर्ति है? तू मृण्मयी है या चिन्मयी है, तू सचमुच है या कल्पना है? यदि है, तो दर्शन क्यों नहीं देती? तेरे बिना मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं।'' प्रतिदिन इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी दर्शन नहीं होने से, एक दिन पागल पुजारी ने माँ के मन्दिर में जाकर खड्ग हाथ में लेकर, 'माँ, तेरे दर्शन के बिना जीना व्यर्थ है' कहकर खड्ग को अपनी गर्दन के ऊपर उठाया, तभी मिट्टी की मूर्ति में से ज्योतिर्मय रूप प्रगट हुआ। उनके हाथ से खड्ग गिर पड़ा, वे स्वयं भी नीचे गिर पड़े। इसके बाद क्या हुआ, उन्हीं के शब्दों में, ... ''और मैं बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा, इसके बाद वह दिन और दूसरा दिन कैसे बीता, मुझे उसका पता नहीं। परन्तु मेरे अन्तर में एक अपूर्व और विशुद्ध आनन्द का प्रवाह दौड़ रहा था।'' जगदम्बा का साक्षात्कार करने वाले ये पागल पुजारी थे श्रीरामकृष्ण। जिसने तीव्रता से पुकार कर ईश्वर की शान्ति को छीन लिया है, उसे ईश्वर अवश्य मिले हैं।

यह तो ईश्वर को प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षा वाले

असामान्य मनुष्यों की बात हुई, लेकिन सामान्य मनुष्य भी अपने दैनिक जीवन में यदि नित्य प्रार्थना करें, तो उनका मन शान्त और स्थिर हो जाता है। फिर किसी भी विकट परिस्थिति में वे स्वस्थ रह सकते हैं। पिछले दिनों गुजरात में भूकम्प आया था। एक सद्‌गृहस्थ का प्रतिदिन सबेरे भगवान की आराधना-प्रार्थना करने का नियम था। उस समय वे प्रार्थना में बैठे थे। भूकम्प आया, तो पत्नी रोने लगीं। उन्होंने पत्नी से कहा, 'इस प्रकार घबराने से कुछ नहीं होगा' और पत्नी का हाथ पकड़कर सुरक्षित बाहर निकल गये। जो व्यग्र होकर रोने-धोने लगे, वे कुछ ही क्षणों में मकान गिरने से दब गये।

प्रार्थना ने उन्हें स्वस्थ रहने की शक्ति और अनासक्ति प्रदान की थी। कठिन परिस्थितियों में प्रार्थना और नाम-स्मरण अविचलित रहने का बल देते हैं। गुजरात में भूकम्प के समय एक महिला और उनकी बेटी मलबे में दब गयी। बारह वर्ष की बेटी के ऊपर एक बड़ा पत्थर आ रहा था, यह देखकर उस दबी हुई स्थिति में भी माँ ने अपने दोनों हाथ से धक्का मार कर उसे धकेल दिया, फिर माता-पुत्री उसी स्थिति में भगवान का सतत स्मरण करती रहीं। कितनी बार बचाओ, बचाओ आवाज लगाई पर किसी ने नहीं सुनी, दोनों का गला बैठ गया। फिर दोनों भगवान की जैसी इच्छा कहकर प्रार्थना करती रहीं। अन्त में मदद आई। नौ घंटे तक मलबे में दबे रहकर भी दोनों सुरक्षित निकाल ली गईं। यह है प्रार्थना की शक्ति। प्रार्थना से मनुष्य का भगवान के साथ सेतु बन जाता है। भगवान के सामने सच्चे भाव से निवेदन करने के बाद, भगवान ऐसी परिस्थिति का निर्माण करते हैं कि मनुष्य कठिनाइयों से शीघ्र पार हो सकते हैं। प्रार्थना से मनुष्य की आन्तरिक शक्ति बढ़ती है, उसमें आत्मविश्वास जगता है कि 'भगवान अब मेरी स्थिति जानते हैं।' बस, इतनी सी बात व्यक्ति को विपत्ति से पार करने के लिये पर्याप्त है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रार्थना है, "हे, प्रभु, संकटों में तुम मेरी रक्षा करो, ऐसी मैं प्रार्थना नहीं करता हूँ, लेकिन संकट देखकर मैं भयभीत नहीं होऊँ, यही चाहता हूँ।

मेरा भार हल्का हो जाए, ऐसी सहायता मैं नहीं चाहता हूँ, पर उस बोझ को उठाने की शक्ति मुझे मिले, यह मैं चाहता हूँ।

.. दुख और भय से मेरा मन व्यग्र हो, तो तुम मुझे सांत्वना दो, ऐसी मेरी माँग नहीं है, लेकिन उन दुखों पर विजय प्राप्त कर सकूँ, ऐसी शक्ति मुझे मिले, मैं यही माँगता हूँ।"

ऐसी प्रार्थना करने से भले ही दुख दूर न हो, पर उस दुख को सहन करने की शक्ति अवश्य बढ़ती है। ऐसी शक्ति मिलने के बाद दुख का जोर कम हो जाता है।

प्रार्थना तो भगवान के साथ सीधा वार्तालाप है। विश्व का संचालन करनेवाली उस महान शक्ति के साथ संवाद है। यह संवाद कभी भी, किसी भी स्थिति में हो सकता है। ईसाई धर्म के महान सन्त ब्रदर लॉरेन्स के जीवन की बात है। वे सेना में थे। लड़ाई में उनका एक पैर कट गया था। फिर वे ईसाई धर्म के कार्मेलाइट संघ से जुड़ गये। संघ में उन्होंने २६ वर्षों तक रसोईघर में काम किया। उनके जीवन में जब कोई कठिनाई आती या उन्हें कुछ समझ में नहीं आता, तो वे भगवान के साथ बातें करते थे, "हे भगवान, आपके सिवाय इस जगत में मेरा कोई नहीं है। मुझे कुछ समझ में नहीं आता, आप ही मुझे समझाइये, सिखलाइये और मार्गदर्शन कीजिये।" इस प्रकार वे हृदय से भगवान को जो कुछ कहते थे, बाद में उन्हें लगने लगा, जैसे भगवान सुन रहे हैं। आश्चर्यजनक रूप से उन्हें कठिनाइयों में मार्ग मिलने लगा, भीतर से सब कुछ स्वयं ही समझ में आने लगा। इस प्रकार भगवान से बातें करते हुए उन्होंने भगवान के साथ एकात्मता स्थापित कर ली थी और वे ईसाई धर्म के महान संत बने। उनकी पुस्तक 'प्रभुमय जीवन' (दी प्रेक्टीस ऑफ दी प्रेजन्स ऑफ गॉड) में उनकी प्रभु के साथ आत्मीयता का दर्शन होता है। उसमें वे कहते हैं, "प्रारम्भ में जब मैं संघ से जुड़ा, तब भगवान का स्मरण मेरे लिये जितना कठिन था, उतना ही कठिन अब मेरे लिए ईश्वर का विस्मरण हो गया है।" **(क्रमशः)**

पृष्ठ २८ का शेष भाग

झूठ बोल रहे हो। तुम्हारी उम्र पन्द्रह वर्ष से अधिक दिखती नहीं है। तुम्हें परीक्षा में बैठने नहीं दिया जाएगा।' अण्णासाहब ने कहा कि वे जन्म से ही दुबले-पतले हैं और अपनी आयु का प्रमाण पत्र भी दिखाया। किन्तु परीक्षक महाशय अपनी जिद्द पर बने रहे। चार दिन लगातार १७७ कि.मी. इतनी दूर से चलकर आए और उन्हें परीक्षा में बैठने नहीं दिया। वे निराश तो अवश्य ही हुए किन्तु इन कठिन परिस्थितियों ने उन्हें और भी मजबूत बना दिया।

अगले वर्ष उन्होंने कोल्हापुर में परीक्षा दी और अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुए। ○○○

लघु-वाक्यवृत्ति

श्रीशंकराचार्य

(भगवत्पाद श्री शंकराचार्य द्वारा रचित यह एक छोटा-सा मात्र १८ श्लोकों का प्रकरण ग्रन्थ है, जिसमें मुख्यत: दो महावाक्यों पर ही चर्चा की गयी है। इनमें से 'तत्त्वमसि' उपदेशबोधक तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' अनुभूतिबोधक है। वैसे दोनों महावाक्यों का एकमात्र लक्ष्य अपने सच्चिदानन्द ब्रह्म-स्वरूप की उपलब्धि मात्र ही है। ग्रन्थ छोटा, किन्तु तत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस पर 'पुष्पाञ्जलि' नामक एक टीका भी प्रचलित है। संस्कृत मूल से इनका हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.।)

स्थूलो मांसमयो देहः सूक्ष्मः स्याद्वासनामयः ।
ज्ञानकर्मेन्द्रियैः सार्धं धीप्राणौ तच्छरीरगौ ।।१।।

अन्वयार्थ – मांसमयः मांसमय **देहः** शरीर **स्थूलः** स्थूल (**उपाधिः** उपाधिवाला) **स्यात्** है (और) **ज्ञान-कर्मेन्द्रियैः** ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों **सार्धं** के सहित **धी-प्राणौ** बुद्धि तथा प्राण **तत्** उस **वासनामयः** कामनामय **सूक्ष्मः** सूक्ष्म (**उपाधिः** उपाधिवाले) **शरीरगौ** शरीर में रहते हैं।

भावार्थ – मांसमय शरीर स्थूल (उपाधिवाला) है (और) ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों सहित बुद्धि तथा प्राण उस सूक्ष्म (उपाधिवाले) कामनामय शरीर में निवास करते हैं।

– टीका –

नत्वा श्रीरामचन्द्राख्यं तत्त्वं वेदान्तगोचरम्।
कुर्वे पुष्पाञ्जलिं टीकां वाक्यवृत्तेरविस्तरम्।।

इह खलु भगवान् श्रीशंकराचार्यः चतुर्लक्षण-मीमांसा-प्रतिपादिताम् अपि ब्रह्मविद्याम् अति-कृपालुतया संक्षेपतः उपदेष्टु-कामः शाखाचन्द्र-न्यायेन उपाधिस्थं ब्रह्म दर्शयितुम् आत्मनः उपाधि-त्रय-मध्ये प्रथमं स्थूलोपाधिं निर्दिशति – स्थूल इति। मांसमयः – मांसास्थि-रक्तादि-प्रधानः देहः आत्मनः स्थूलोपाधिः स्यात्। वासना-प्रधानः लिंगदेहः सूक्ष्मोपाधिः ज्ञातव्यः। धी-शब्देन मनसः अपि उपलक्षणं, प्राण-शब्देन एकस्य एव महाप्राणस्य प्राणादयः पंचवृत्तयः ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि च, एवं सप्तदश-कलात्मकं लिंगशरीरम् आत्मनः द्वितीयोपाधिरित्यर्थः।।

– भावार्थ –

वेदान्त के गोचर श्रीरामचन्द्र नामक ब्रह्म-तत्त्व को प्रणाम करने के बाद मैं संक्षेप में 'लघु-वाक्य-वृत्ति' पर पुष्पांजलि नामक यह टीका लिख रहा हूँ। श्री शंकराचार्य ने चार लक्षणों से युक्त मीमांसा[१] की रचना करने के बाद भी अत्यन्त कृपापूर्वक उस ब्रह्मविद्या का अति संक्षेप में उपदेश करने की इच्छा से, शाखा-चन्द्र-न्याय[२] अर्थात् शाखाओं के बीच दृश्यमान चन्द्रमा के समान, उपाधियों में स्थित ब्रह्म को दिखाने हेतु 'स्थूल' आदि कहकर आत्मा की तीन उपाधियों में से पहली का निर्देश करते हैं।

मांसमय – मांस, अस्थि, रक्त आदि से युक्त यह देह – आत्मा की स्थूल उपाधि है। वासना-प्रधान लिंग शरीर को 'सूक्ष्म' उपाधि समझना चाहिये। 'धी' शब्द के द्वारा बुद्धि के साथ ही उपलक्षण से मन को भी समझना होगा, 'प्राण' शब्द के तात्पर्य-रूप में केवल एक महाप्राण ही नहीं, अपितु प्राण आदि पाँचों कार्यों[३] को लेना होगा; और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ[४] – इस प्रकार सत्रह कलाओं वाला सूक्ष्म या लिंग शरीर आत्मा की दूसरी उपाधि है।।१।।

१. उत्तर मीमांसा अर्थात् ब्रह्मसूत्र। इसके चार विभाग हैं – (१) समन्वय (२) अविरोध (३) साधन एवं (४) फल। इन पर आचार्य शंकर का भाष्य।

२. शाखा-चन्द्र-न्याय – एक बालक को (दूज का) चाँद दिखाना हो, तो सर्वप्रथम उसे वृक्ष की दो शाखाएँ और उसके बाद उनके बीच से चमक रहे चन्द्रमा को दिखाया जाता है। यहाँ भी परम सूक्ष्म आत्म-तत्त्व का बोध कराने हेतु पहले स्थूल उपाधि, तत्पश्चात् सूक्ष्म और अन्ततः कारण उपाधि का बोध कराया जा रहा है।

३. प्राण के पाँच कार्य – प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान।

४. सभी इन्द्रियाँ – पाँच कर्मेन्द्रियाँ – वाक्, पाद, पाणि, पायु तथा उपस्थ; और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ – चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वचा।

त्याग के बिना महान आध्यात्मिकता कैसे प्राप्त हो सकती है? त्याग ही सभी प्रकार के धर्मभावों की पृष्ठभूमि है और तुम यह सदैव देखोगे कि जैसे-जैसे त्याग का भाव क्षीण होता जाता है, वैसे-वैसे धर्म के क्षेत्र में इन्द्रियों का प्रभाव बढ़ता जाता है और उसी परिमाण में आध्यात्मिकता का ह्रास होता जाता है ।

– स्वामी विवेकानन्द

काव्य और विज्ञान समन्वय के नवाचारी : स्वामी विवेकानन्द एवं हिन्दी-भाषा काव्य पर उनका प्रभाव

दिनेश दत्त शर्मा 'वत्स'

स्वामी विवेकानन्द एक महान आध्यात्मिक मार्गदर्शक, और धर्म शिक्षक थे। परन्तु इतने से ही उनका सटीक वर्णन नहीं हो पाता। उनके व्याख्यानों एवं पुस्तकों के अध्ययन से उनका बहुमुखी व्यक्तित्व प्रकट होता है। हमारी मन:स्थिति एवं आवश्यकतानुसार इनमें से स्वामीजी का कोई सन्देश हमारे ध्यान को आकृष्ट कर लेता है और हम अन्यों को भूलकर उसी में मुग्ध हो जाते हैं। १८९६ ई. में लन्दन में दिए गए उनके भाषण 'ब्रह्म एवं जगत' के निम्नलिखित अंश ने मुझे विशेषत: आकर्षित किया – ''विज्ञान और धर्म एक दूसरे का आलिंगन करेंगे। कविता और विज्ञान मित्र हो जायेंगे। यही भविष्य का धर्म होगा। यदि हम ऐसा ठीक-ठीक कर सके, तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह सभी काल और सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी होगा।''

धर्म और विज्ञान की सहभागिता के उनके विचार के महत्त्व को धर्म के आधुनिक व्याख्याता स्वीकार करते जा रहे हैं एवं विज्ञान जगत भी व्यापक स्वीकरोक्ति प्रदान कर रहा है। उपरोक्त उद्‌गार के द्वितीय भाग काव्य और विज्ञान के समन्वय सम्बन्धी उनके विचार साहित्य और विज्ञान क्षेत्र में व्यापक चर्चा के विषय नहीं बन पाए हैं। इन दोनों प्रकार के समन्वय का स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप क्या होगा, यह भी स्पष्ट चर्चा का विषय नहीं बन पाया है। विज्ञान के साथ इस द्वितीय-स्तरीय समन्वय के स्थूल स्वरूप को स्वामीजी अपने प्रवचनों, वार्तालापों अथवा काव्य रचनाओं में स्थापित करते रहते थे। अपनी तप:ऊर्जा से जो विचार तरंगें, स्वामीजी ने समष्टि मन में सम्प्रेषित कर दी थीं, परवर्ती कवियों और चिन्तकों के मन-मस्तिष्क उनसे प्रभावित होने लगे थे। जाने-अनजाने अन्य विद्वान भी काव्य और विज्ञान की सहभागिता के महत्त्व को स्वीकारने लगे थे।

भविष्यद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द के उद्‌गार कल्पना मात्र ही नहीं थे। उन्होंने जो कहा, उसे करके दिखाया। वे स्वयं कवि और गायक थे। उनकी एक कविता 'गाइ गीत सुनाते तोमाय' का हिन्दी अनुवाद महाकवि निराला ने 'गाता हूँ गीत तुम्हें सुनाने को' नामक शीर्षक से किया है। इस शीर्षक से ही प्रतीत होता है कि इस कविता के द्वारा वे उस दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, जहाँ पहुँचकर कविता और विज्ञान मित्र हो जायेंगे। साथ-ही-साथ काव्य का रूप और कथ्य भी निर्धारित कर रहे हैं –

अणुक-धणुक जड़ जीव आदि जितने हैं
देखो, एक सम क्षेत्र में हैं सब विद्यमान। ...
चेतन पवन हैं उठाती उर्मिमालायें
महाभूत सिंधु पर,
परमाणुओं के आवर्त घन विकास और
रंग-भंग-पतन उच्छ्‌वास-संग
बहती बड़े वेग से हैं तरंग राजियाँ।

कविहृदय स्वामी विवेकानन्द का शब्दों पर पूर्ण अधिकार था, जिससे वे विज्ञान द्वारा खोजे गये अणु-परमाणुओं को अपनी उपरोक्त कविता में प्रतीक या बिम्ब बनाने में समर्थ हो सके हैं, और जिसके आधार पर उनकी अन्तर्प्रज्ञा और संवेदनशीलता को, उनके शब्दों के चमत्कार और संगीत के माध्यम से पढ़ा और सुना जा सकता है। सामान्यत: उद्वेलन को एकमात्र काव्य गुण माना जाता रहा है, किन्तु, उद्वेलन के साथ परिष्कार की क्रिया भी काव्य-प्रभाव का एक उल्लेखनीय अंग है। ऐसी ही अन्य रचनाओं के माध्यम से स्वामीजी ने अन्य कवियों के सम्मुख काव्य और विज्ञान के मधुर मिलन का मार्ग प्रशस्त किया। 'सखा के प्रति' नामक कविता में उन्होंने लिखा है –

ब्रह्म और परमाणु कीट तक सब भूतों का है आधार,
एक प्रेममय प्रिय, इसके चरणों में दो तन मन वार।

इस दिशा में स्वामी विवेकानन्द की समाधि-प्रसूत ऊर्जा व्यर्थ नहीं गई। परवर्ती कवियों ने उनकी भाव तरंगों को जाने-अनजाने ग्रहण किया और यत्र-तत्र-सर्वत्र उनके काव्य में विज्ञान-बोध प्रकट होने लगा है। विज्ञानसम्मत प्रामाणिक साधना की प्रत्यक्ष अनुभूति का प्रतिपादन स्वामी विवेकानन्द, तदनन्तर महर्षि अरविंद घोष द्वारा सम्पन्न हुआ। स्वामी विवेकानन्द प्रणीत विचारों को उन्होंने पूर्णत: आत्मसात् किया। साधना क्रम में उनके हृदय में कविता का उद्रेक हुआ है। उनकी काव्य अभिव्यंजना में कविता और विज्ञान मित्र हो गए हैं। उदाहरणार्थ, ७५ वर्ष पूर्व लिखित और द्वारिका

प्रसाद गुप्ता द्वारा अनूदित उनकी कविता है –

इलेक्ट्रोन

इलेक्ट्रोन जिन पर-रूपों, जगतों के होते हैं आकार निर्मित,
प्राण की सत्ता में कूद पड़ा, ईश्वर का एक काया।
शाश्वत की ऊर्जा से अग्निकण हुआ एक विखंडित
है यह अनन्त की अंध सूक्ष्म निवास स्थल।
करते हैं शिव सवारी, उस प्रज्वलित लघु रथ के वाहन में।
एक मात्र एकम है बन गया रूपों में असंख्य,
रखता है अपने एकत्व को प्रच्छन्न अदृश्य छद्मावरण में,
है जो शाश्वत प्रभु के कालगत नन्हें देवालय।
अपनी अदृश्य योजना में परमाणु और अणु सब
अनूठे एकत्वों के प्रसाद को देते अवलम्बन,
स्फटिक, पादप, कृमि, पशु और मानव तक।

ऐसी काव्य रचनाओं से सिद्ध होता है कि वैज्ञानिक विवेचन और अनुसंधान द्वारा उद्घाटित तथ्यों के मर्मस्पर्शी पक्ष का इस रूप में प्रत्यक्षीकरण कि वह हमारे किसी भाव का अवलम्बन हो सके, काव्य का एक लक्षण हो सकता है। विज्ञान द्वारा उद्घाटित विभिन्न तथ्य अभिव्यक्ति में अपना योग देकर काव्य में मार्मिकता-आकर्षण का विधान कर सकते हैं। विज्ञान के ये तथ्य काव्य-भवन की नींव बन सकते हैं, जिसके द्वारा उसका निर्माण सुन्दर और स्थायी बनाया जा सकता है।

विवेकानन्द कोरे ज्ञानी कवि नहीं हैं, वे विज्ञानी कवि हैं। उन्हें चरमतत्त्व की साक्षात् अनुभूति का सम्बल है। स्वामी विवेकानन्द ने ध्यान की गहराइयों में अनुभव किया कि मानव और ब्रह्माण्ड में एकता है और मानव ब्रह्माण्ड का ही एक लघु रूप है, तथा परमाणु के भीतर भी समूचा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। कवि विवेकानन्द स्वामी की यह अनुभूति निरे बौद्धिक ज्ञान पर आधारित नहीं है, वह पूर्णत: अनुभूत है। चरमतत्त्व के बौद्धिक ज्ञान की अभिव्यक्ति काव्य को दर्शन की गूढ़ वस्तु बना देती है, परन्तु अनुभूत अभिव्यक्ति विशुद्ध रस का उद्रेक है।

आचार्य विनोबा भावे का कथन है – "पुराने जमाने में सृष्टि कम प्रकट थी और सृष्टि का गूढ़ भी कम प्रकट था। इसलिए विज्ञान भी कम था, काव्य भी कम था। इस जमाने में सृष्टि का प्रकाश भी अधिक है। सृष्टि और गूढ़ता दोनों अधिक प्रकट हुए हैं। इसलिए, जैसे विज्ञान की सम्भावना अधिक है, वैसे ही काव्य की भी सम्भावना अधिक है।" (आत्मज्ञान और विज्ञान, पृष्ठ-४४) उसी पुस्तक में वे कहते हैं – "अग्नि की खोज के बाद सारे ऋषिगण भक्ति भाव से अग्नि के गीत गाने लगे। ये गीत वेदों में आते हैं। अब शायद अणु शक्ति के गीत गाने वाले ऋषिगण पैदा होंगे।" (वही, पृष्ठ-३५)

आचार्य भावे के निष्कर्ष एक दार्शनिक ऊहापोह मात्र कह कर नहीं नकारें जा सकते। उनके दृष्टिकोण के प्रकाशन से बहुत पूर्व ही हिन्दी काव्य जगत के मूर्धन्य महाकवि जयशंकर प्रसाद ने अपनी अमर काव्य कृति 'कामायनी' में तत्कालीन विज्ञान द्वारा उद्घाटित सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का अपनी सरस काव्य रचना में भरपूर उपयोग किया है। आचार्य भावे के समकालीन और उनसे परिचित एवं प्रभावित एक आधुनिक मूर्धन्य कवि श्री भवानीप्रसाद मिश्र की निम्न रचना भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है –

एक लघु अणु है कि साधो उसे, सधता नहीं है,
शक्ति का उद्यम निर्झर है, अगर बाँधो उसे, बंधता नहीं है
कहाँ है विश्राम? श्रम भर है।

अपनी स्वाभाविक रचना-प्रक्रिया काल में अनेक कवियों का भाव जगत विज्ञान-बोध से प्रभावित हुआ है और ऐसे उदाहरण भी प्राप्त हैं। समय का प्रभाव अधिकांश लोगों पर अतिशय रूप से पड़ता है। श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'नहुष' नामक काव्य पुस्तक के 'सन्देश' शीर्षक रचना का निम्न अंश एक सुन्दर उदाहरण है –

...प्रस्तुत मैं मान रखने को एक तृण का
और मैं ऋणी हूँ परमाणु के भी ऋण का।(पृ.,३०)

परम्परानुसार कवि ने सबसे छोटी वस्तु के लिए प्रथमत: तृण का ही प्रयोग किया है, पर शीघ्र ही उसे बोध होता है कि विज्ञान द्वारा सिद्ध सबसे छोटा कण परमाणु है और वह उसे छोटेपन का प्रतीक बना लेता है।

अभी तक विज्ञान से जिन कवियों का बौद्धिक सम्बन्ध ही है, वे कवि बुद्धिस्तर पर ही समरस हो पाए हैं। समय के पथ पर विज्ञान के बढ़ते चरणों को देखकर आत्मनिष्ठ, परम्परावादी और भावनाशील व्यक्ति तो आशंका, भय और आतंक की भावना से ग्रस्त हो जाते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते हैं –

सृष्टि को निज बुद्धि से करता हुआ परिमेय,
चीरता परमाणु की सत्ता असीम अजेय,
बुद्धि के पवमान में उड़ता हुआ असहाय

जा रहा तू किस दिशा की ओर निरुपाय?

(''कुरूक्षेत्र'' षष्ठ सर्ग, पृष्ठ-११२)

परन्तु जब विज्ञान 'भाव' के स्तर पर पहुँच कर उसी कोटि की आद्रता, तरलता धारण कर लेता है, जो दर्शन की शब्दावली को प्राप्त हो चुकी है, तो भाषा की आन्तरिक भावभूमि में भी परिवर्तन होते हैं। जैसाकि श्री सुमित्रानन्दन पंत द्वारा लिखित 'गुंजन' नामक काव्य पुस्तक के अन्तर्गत संगृहीत कविता 'सुन्दर विश्वासों से ही' स्पष्ट होता है –

महिमा के विशद जलधि में, हैं छोटे-छोटे से कण।
अणु से विकसित जग जीवन, लघु अणु का गुरुतम साधन।

इसी प्रकार अपनी रचना 'रहस्यवाद' में 'हियहारिन' पुस्तक में नव सप्तक के प्रणेता कवि 'अज्ञेय' लिखते हैं –

शक्ति असीम है, मैं शक्ति का एक अणु हूँ,
मैं भी असीम हूँ।
एक असीम बूँद, असीम समुद्र को अपने भीतर,
प्रतिबिम्बित करती है।

(हियहारिन, पृष्ठ-९३)

अज्ञेय यह जानते थे कि पश्चिम के अनेक वैज्ञानिक विकास की गुत्थी सुलझाने के लिए रहस्यवाद का सहारा ले रहे हैं और अनेक आधुनिक वैज्ञानिकों के विचारों में रहस्यवाद का पुट है भी। यह रहस्यवादी कल्पना अज्ञेय ने अपनी बाद की रचनाओं में अनेक बार दोहराई भी है।

साहित्य निरन्तर विकासशील शक्ति है। वह मनुष्य के हर कृत्य से जुड़ी है, चाहे वह घटना सामयिक हो अथवा सार्वकालिक। हर युग की अपनी सामयिकता किसी-न-किसी प्रकार की सार्वकालिकता को जन्म देती है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व महाकवि निराला रचित राष्ट्रोत्थान की एक कविता 'जागो फिर एक बार' में विज्ञान का सत्य कवि-कल्पना की उड़ान को एक नया आकाश देता है और वह गा उठता है –

महामंत्र ऋषियों का
अणु-परमाणुओं में फूँका हुआ –
तुम हो महान, तुम हो महान,...
पद रज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार।

अणुबम विस्फोट के प्रथम परीक्षण के समय उत्पन्न प्रकाश की तीव्रता को देखकर तत्कालीन निर्देशक वैज्ञानिक ओपनहीसर को गीता में वर्णित विराट स्वरूप का स्मरण हो आया था और उनका वह उद्‌गार वैज्ञानिक जगत का मिथक बन गया है। विज्ञान का सत्य भी कवि दृष्टि में एक नया मिथ बन जाता है। इस मिथक को स्वीकार करते हुए सुकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने विज्ञान द्वारा प्रस्तुत परिस्थिति में अपनी निजी अनुभूति की व्यंजना 'कल्कि' नामक निम्न कविता में कलात्मक रूप से करते हुए, उसे लोकचित्त की गहराईयों तक संप्रेषित किया है –

ऊपर नभ पर, नीचे भू पर
यह कोटि-कोटि मार्तंडों का
दु:सह प्रकाश भरता जाता
अगणन अणुओं के खंडन का
है तेज मलिन, निहृदयों से परिपूरित सब
हैं दशों दिशायें कम्पमान।

काव्य का रूप और कथ्य प्रत्येक युग में बदलता रहता है। आधुनिक भारतीय कवि, प्राचीन और अर्वाचीन से अधुनातन जगत में प्रवेश करते-करते काफी बदल चुका है। विज्ञान भी एक सतत गतिशील विद्या है। नूतन अनुसंधानों के प्रकाश में वैज्ञानिक तथ्यों की परिभाषायें बदलती रहती हैं। प्रारम्भ में वैज्ञानिकों ने 'अणु' को पदार्थ का अन्तिम अविभाज्य कण माना था। तत्पश्चात् वह परिभाषा 'परमाणु' को प्राप्त हुई। तदनन्तर परमाणु भी विभाजित हो गया। वैज्ञानिक विवेचन और अनुसंधान द्वारा उद्‌घाटित तथ्यों के इस पक्ष को डॉ. मंजु ज्योत्स्ना ने मर्मस्पशी रूप से अपनी कविता 'युग बदला' की निम्न काव्य पंक्तियों में प्रत्यक्ष लिखा है –

मौसम का स्वभाव भी बदला
शीतल मंद मलयानिल भूला
अणु-अणु, परमाणु-परमाणु
सबकी परिभाषायें बदली।

(युग बदला, पृष्ठ-१७२, कादम्बिनी, मई २००२)

विज्ञान तथ्य की खोज करता है और साहित्य भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वैज्ञानिक तथ्यों को प्रकट करने से भाषा में भाव-प्रकाशन की क्षमता और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की सामर्थ्य बढ़ती जाती है। किताब घर प्रकाशन की मासिक पत्रिका 'समकालीन साहित्य समाचार' पृष्ठ -२२, दिसम्बर - २००८ में प्रकाशित प्रख्यात गीतकार भारत भूषण की

शेष भाग पृष्ठ ४५ पर

अपनी दृष्टि में पवित्र बनो

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

दूसरे लोग आपको पवित्र समझते हैं कि नहीं - इससे कोई मतलब नहीं है। आप स्वयं में, अपनी दृष्टि में पवित्र हैं कि नहीं? एक सज्जन विदेश जा रहे थे। उन्होंने काशी के पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे जी के पास जाकर कहा कि महाराज, कुछ उपदेश दीजिए । पण्डितजी ने कहा, ''देखो भाई! काशी में पहले रामा राव नामक एक सज्जन थे। उनको विदेश जाना था, तो वे काशी के बहुत बड़े महात्मा स्वामी योगत्रयानन्दजी के पास गये और कहा कि महाराज, ''हम विदेश जा रहे हैं, हमको कुछ उपदेश दीजिए।'' योगत्रयानन्द जी ने कहा, ''देखो बेटा! तुम अपनी दृष्टि में अपने को नीचा मत गिराना ।'' संसार तुम्हें ऊँचा समझे या नीचा समझे; परन्तु जब तुम्हारी दृष्टि कह देगी, तुम्हारी बुद्धि कह देगी कि तुमने अनुचित कार्य किया, तो भले ही दूसरे लोग तुमको अच्छा समझें, तो दूसरों के अच्छा समझने से कोई अच्छा नहीं होता। स्वयं अपनी दृष्टि में गलत काम नहीं करना चाहिए। अपना सन्तोष बनाये रखना चाहिए। अपना 'जज' अपने भीतर बैठा है। उसकी यदि सुनते रहो, तो वह समय-समय पर सलाह भी देता है कि यह काम उचित है और यह काम अनुचित है। यदि उसकी सुनी अनसुनी कर दो, तो फिर वह सलाह देना बन्द कर देता है। **यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात् परितोषोऽन्तरात्मनः** – आपका भीतर से सन्तोष छलकता रहता है कि नहीं? उल्लसित सन्तोष जीवन में है कि नहीं? नहीं तो दूसरों की दृष्टि में कैसे भी हुए, क्या फर्क पड़ता है !

पवित्रता अपनी दृष्टि में होनी चाहिए। वास्तव में हमारे जीवन में जो गलतियाँ होती हैं, उन पर जब तक हम हस्ताक्षर नहीं करते, तब तक वे यमराज के दरबार में मान्य नहीं होतीं। गलती करते गये, करते गये; और बोले – नहीं नहीं नहीं। हम कोई गलती नहीं करते हैं। अपनी गलती मानना तो बड़ा कठिन है और अभिमान हो, तब तो फिर पूछना ही क्या! जब बुखार आता है, सिर में दर्द होता है, जब मरने का समय होता है – तब अपना अभिमान ढीला पड़ जाता है। उस समय व्यक्ति सोचने लगता है – मैंने यह गलती की; हस्ताक्षर। पचासों, सैकड़ों गलतियों पर वह उस समय हस्ताक्षर कर देता है ।

दूसरे से 'हाँ' मत कराओ कि हम बहुत अच्छे हैं। तुम स्वयं देखो कि तुम कैसे हो। जो काम करने में तुम्हें सन्तोष होता हो – करो और जिसमें आत्म-ग्लानि होती हो, वह मत करो। ○○○

(दैवी-सम्पद् योग से साभार)

जीवन के लिये लक्ष्य

पुस्तक समीक्षा

लेखक – ए. आर. के. शर्मा

अनुवादक – स्वामी गीतेशानन्द

सम्पादक – स्वामी उरुक्रमानन्द

प्रकाशक – सारदा बुक हाउस, १ला माला, प्लॉट नं.-३, १ला क्रास रोड, एल.आई.सी कॉलोनी, विजयवाड़ा - ५२० ००८

फोन-९७६८९३४९९७, पृ.-१५२, मूल्य – १००/-

मानव जीवन की गति उसके लक्ष्य के आधार पर गतिशील होती है। यदि जीवन का कोई लक्ष्य ही न हो, तो व्यक्ति चौराहे पर निष्क्रिय खड़ा होकर कहाँ जाऊँ, यही सोचता रहेगा और किसी ओर भी नहीं जा सकेगा। इसलिये सभी आचार्य और मार्गदर्शक सर्वप्रथम लक्ष्य निर्धारित करने को ही कहते हैं। युगाचार्य महामनीषी युवाओं के प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, यदि कोई व्यक्ति, जिसका एक आदर्श है, हजार गलतियाँ करता है, तो यह निश्चित है कि जिसके पास कोई आदर्श नहीं है, वह दस हजार गलतियाँ करेगा। अत: जीवन में एक आदर्श होना अच्छा है।''

जीवन-लक्ष्य के सम्बन्ध में श्री ए. आर. के. शर्माजी ने अपनी सद्य: प्रकाशित 'जीवन के लिये लक्ष्य' नामक पुस्तक में विस्तृत चर्चा की है। लेखक स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों से प्रभावित हैं। उन्होंने स्वामीजी के विचारों कों अभिनव रूप में प्रस्तुति दी है। यह पुस्तक ९ अध्यायों में है, जिसमें जीवन में लक्ष्य का महत्त्व, उपयुक्त लक्ष्य न हो तो, कुछ तो करो, सोचो, जीवन के मूल्यों को उच्चादर्श की ओर अग्रसर करना, अनेक इच्छाओं में से किसी एक का चयन करना, लक्ष्य को योजनाबद्ध करना, योजनाओं एवं परिणामों के मध्य का सेतु है कर्म, आध्यात्मिक लक्ष्य, आदर्श और लक्ष्य को जागतिक स्तर पर उतारना शीर्षक पर बोधगम्य विश्लेषण किया गया है। जिससे व्यक्ति प्रेरित होकर अपने लक्ष्य का चयन कर उसकी प्राप्ति में उत्साह से लग जाए। पुस्तक में लेखक ने विभिन्न प्राच्य-पाश्चात्य ऐसे सफल महानुभावों के चित्र और उनकी प्रेरक वाणी का उद्धरण भी दिया है, जिससे पुस्तक आकर्षक हो गई है, तथा देखते ही पढ़ने को प्रेरित करती है। पुस्तक का आवरण-पृष्ठ स्वामी विवेकानन्द के शंखनाद से सुशोभित है। निश्चय ही यह पुस्तक आज के दिग्भ्रमित युवकों को लक्ष्य-चयन हेतु उस दिशा में गतिशील होने के लिये प्रेरित करेगी। ○○○

साधक-जीवन में निर्भयता

स्वामी परमानन्द

स्वामी परमानन्द

(स्वामी परमानन्दजी स्वामी विवेकानन्द के शिष्य थे। अमेरिका में अनेक वर्ष रहकर उन्होंने वेदान्त का प्रचार किया। प्रस्तुत लेख एक आध्यात्मिक जिज्ञासु को लिखे उनके उपदेशों का अंश है।)

यदि तुम अपने आदर्श पर निर्भयता, पवित्रता और दृढ़तापूर्वक स्थित हो, तो कोई भी तुम्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकता। क्या हम इसलिए अपना आदर्श जीवन छोड़ दें कि कुछ लोग इसके विषय में अनुचित कहकर इसका विरोध करते हैं? नहीं! हमें ऐसा नहीं करना है। चाहे पूरा विश्व हमारे विरुद्ध हो जाए, तो भी अपने आदर्श के प्रति हमें अविचलित और निष्ठावान रहना है। इसके लिए हमें बल और दृढ़-निश्चय की आवश्यकता है। जब सब कुछ अनुकूल चल रहा होता है, तब कोई भी वीर हो सकता है। किन्तु वही वास्तविक वीर है, जो अपने उद्देश्य पर अडिग रहे, चाहे समस्त विश्व उसके विरोध में खड़ा हो जाए। यही जीवन की परीक्षा है।

आदर्श चरित्र गढ़ने के लिए हमें अनेक परिस्थितियों का अनुभव होना चाहिए। इसके लिए हमें भला-बुरा, सुख-दुख, हर्ष-विषाद इत्यादि से गुजरना होगा। जब हम सुख-दुख में अचल होते हैं, तभी हम पूर्णता को प्राप्त होते हैं। तब हमें बाह्य संसार से कोई भय नहीं रहता।

संसार में रखा ही क्या है? हम जानते हैं कि इसमें वास्तविक सुख नहीं है। इस क्षणभंगुर संसार में सुख हो भी कैसे सकता है? यदि हम इस जीवन में ईश्वर-प्राप्ति न भी कर सकें, तो कोई बात नहीं, किन्तु जिस तुच्छ संसार को हमने विषवत् त्याग दिया है, उसे पुन: ग्रहण करने का कदापि नहीं सोचना चाहिए। यह बात तुम्हें सदा याद रहनी चाहिए और इससे तुम्हें महान शक्ति प्राप्त होगी। जिसने इस संसार का त्याग कर दिया है अथवा दूसरे शब्दों में, इसे थूक के समान फेंक दिया है, यदि वह फिर से उस घृणास्पद वस्तु को ग्रहण करे, तो वह व्यक्ति कितना मूर्ख, बुद्धिहीन, दयनीय और निर्लज्ज माना जाएगा! जो कुछ वास्तविक सुख है, वह पवित्र और सच्चा जीवन जीने में ही है। इसके अलावा दूसरे किसी उपाय द्वारा यह सुख सम्भव नहीं है।

शक्तिशाली होओ और अनन्त धैर्य का अभ्यास करो। धैर्य के द्वारा सब पर विजय प्राप्त होती है। दृढ़-निश्चयी बनो और साहसपूर्वक कहो, ''मैं पवित्र जीवन जीऊँगा।'' अपनी शक्ति को प्रकट करो और इस संसार से निर्भीकतापूर्वक कहो, ''हे दंभी जगत! दूर हो जाओ! मैं तुम्हें नहीं चाहता। मैं तुम्हारी सहायता नहीं चाहता।'' अपनी पूरी शक्ति को अभिव्यक्त करो और बारम्बार कहो, ''मैं शक्तिशाली हूँ! मैं पवित्र हूँ! मैं सच्चा हूँ!'' तुम देखोगे कि तुरन्त ही अज्ञान के बादल नष्ट हो जाएँगे और शीघ्र ही तुम्हारा पवित्र हृदय दिव्य प्रेम और प्रकाश से पूर्ण हो जाएगा।

भय? किससे भय? ऐसा क्या है, जो हमें भयभीत करे? क्या हम शत्रु को अपनी पीठ दिखाएँ? नहीं! कदापि नहीं! जीवन के रणक्षेत्र में दास की अपेक्षा वीर की भाँति मरना श्रेयस्कर है। जिसके पास पवित्रता की ढाल और ज्ञान की तलवार है, वही साहसपूर्वक लड़ सकता है।

जिनकी प्रवृत्ति भोगवासनाओं को पूरा करने में है, उनके लिए त्यागपूर्ण आध्यात्मिक जीवन अत्यन्त कठिन है, किन्तु इस जीवन में महान सुख और शान्ति है। त्याग में ही वास्तविक आनन्द है। त्याग करो, त्याग करो और मुक्त हो जाओ। हम तब तक मुक्त नहीं हैं, जब तक हम किसी पर निर्भर हैं। जब हम किसी भी बाह्य सहायता पर निर्भर नहीं होते, जब सब कुछ हम अपनी अन्तरात्मा से प्राप्त करते हैं और उसी में सन्तुष्ट रहते हैं, तब हम मुक्त हो जाते हैं। इन्द्रिय-सुख में रखा ही क्या है? उनसे केवल दुख और अन्धकार ही प्राप्त होता है। एक क्षण के इन्द्रिय-सुख के लिए हमें पूरा जीवन दुख भोगना पड़ सकता है। ऐसे क्षणिक सुख से क्या लाभ, जिसे भोगने के बाद अन्त में हमें दुख ही भोगना पड़े? यदि पूरा जीवन संघर्ष करने के बाद हमें आध्यात्मिकता की एक झलक न भी मिले, तो भी ऐसे सुख के पीछे नहीं भागना चाहिए। आत्मसंयम के द्वारा कम-से-कम हम स्वाधीन तो रहेंगे। इस जीवन में यदि ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती है, तो कोई बात नहीं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम दास के समान इस संसार में जीएँ और मूर्ख के समान विषय-वासनाओं में पड़कर अधिकाधिक बन्धनों का निर्माण करें। जैसे अग्नि में घी डालने से, वह और अधिक प्रज्वलित होती है, वैसे ही वासनाओं का हम जितना अधिक भोग करेंगे, उतना ही वे दृढ़तर होती जाएँगी। जब हम जानते हैं कि यह संसार दुखपूर्ण है, तो हम इसमें क्यों फिर से फँसें? नहीं, किसी भी परिस्थिति में हमें पीछे नहीं मुड़ना है। इस प्रकार

के दृढ़-निश्चय की आवश्यकता है। त्याग का अर्थ है – छोड़ देने के बाद पुन: कभी नहीं ग्रहण करना।

बल की आवश्यकता है, दृढ़ता की आवश्यकता है। बल के द्वारा ही सब पर विजय प्राप्त होती है। जिनका चरित्र पवित्र और निस्स्वार्थ होता है, उनसे देवता भी भयभीत रहते हैं। चरित्र की शक्ति सचमुच महान होती है।

बलवान होओ! आगे बढ़ो और भय मत करो। दृढ़तापूर्वक कहो कि तुम शुद्ध, पवित्र और बलवान हो। तब सब प्रकार के भय से तुम मुक्त हो जाओगे। स्वार्थपरता ही भय का कारण है। इसलिए पूर्णत: नि:स्वार्थी होओ। साहसी होओ! साहसी होओ! साहसी होओ! दुर्बल लोग कभी भी सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकते। तुमने जो कुछ अपने जीवन में पढ़ा-सुना-देखा है, उसका सारग्रहण कर उसे जीवन में आचरित करने का प्रयास करो। चाहे पूरा विश्व तुम्हारे विरुद्ध हो जाए, तो भी अपने महान आदर्श को कभी मत छोड़ो।

पराजय का जीवन जीने की अपेक्षा युद्ध में मर जाना श्रेयस्कर है। जब तक हम जीवित हैं, हमें निर्भीकतापूर्वक अपने शत्रुओं से लड़ना है। हमारा कोई बाहरी शत्रु नहीं है। हमारी वासनाएँ और इच्छाएँ ही हमारे वास्तविक शत्रु हैं। उन पर विजय प्राप्त करो और तुम मुक्त हो जाओगे। बल और धैर्य, दोनों की आवश्यकता है। ऐसे जीवन का क्या प्रयोजन, जो सत्य पर स्थित न हो सके! बलवान होओ, निर्भय होओ और सब कुछ पवित्रता की दृष्टि से देखो। जीवन एक निरन्तर संघर्ष है, हमें यहाँ आराम की अपेक्षा नहीं करनी है। बढ़ते चलो। निराशा अथवा दुर्बलता के वशीभूत मत होओ। दुख एक महान शिक्षक है और यह हितकर है।

गीता में भगवान के इस उपदेश का सदैव स्मरण करो, ''जो सुख आरम्भ में विष के समान प्रतीत होता है, किन्तु परिणाम में अमृत के समान है, उसे सात्त्विक सुख कहा गया है। किन्तु जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है, वह आरम्भ में अमृत के समान होने पर भी परिणाम में विष के समान है।'' हमें अपनी विवेक-शक्ति का उपयोग कर अच्छे और बुरे का अन्तर समझना है। वासनाओं के प्रवाह में बह जाना बड़ा आसान है, किन्तु जो अपनी विवेक-शक्ति के द्वारा उन पर विजय पाता है, वही सच्चा वीर है।

दुर्बलता मृत्यु है। मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि बल ही धर्म है, बल ही सत्य है। जो कुछ हमें दुर्बल बनाए, वह पाप है। हमें अपनी पूरी शक्ति के साथ उसका त्याग करना है। अपनी भूलों से हम सीखते हैं, किन्तु एकबार सीखने के बाद हमें दृढ़ता से कार्य करना है और किसी भी दुर्बलता के वश नहीं होना है। यही महानतम कर्तव्य है और यही श्रेष्ठतम योग है। जब तक हम अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त नहीं कर लेते और स्वयं के स्वामी नहीं बन जाते, तब तक हम विश्राम के बारे में सोच भी कैसे सकते हैं? क्या हमें अपनी इन्द्रियों का दास बनना है? नहीं, हमें ऐसा कदापि नहीं करना है। अज्ञानी लोग भले ही इन्द्रियों के पीछे जाएँ और इस संसार का अनुभव लें, किन्तु हमें ऐसा कदापि नहीं करना है। हमें इच्छा-शक्ति के द्वारा उन्हें अपने नियन्त्रण में रखना है। जब हम अपने स्वामी हो जाएँगे, तब हमें कोई बन्धन और भय नहीं रहेगा, केवल शान्ति और आनन्द ही रहेगा। अब और अधिक पढ़ने-बोलने और सोचने की आवश्यकता नहीं है, अब 'होने और बनने' का समय है। चरैवेति! चरैवेति! यह संसार अपने कार्यों में व्यस्त रहे, किन्तु इससे थोड़ा-सा भी प्रभावित हुए बिना हम निरन्तर आगे बढ़ते रहें।

किसी भी परिस्थिति में हमें अपने मन को विचलित नहीं होने देना है। परिस्थितियों का समाधान अपने-आप हो जाएगा। ''हमें केवल कर्म करने का अधिकार है, उसके फल का नहीं।'' कर्म करना अर्थात् स्वयं का चरित्र-निर्माण करना। हम चरित्र-निर्माण करें और व्यर्थ बातों में अपनी ऊर्जा न गँवाएँ। महान आचार्यों ने केवल उपदेशों के द्वारा ही नहीं, किन्तु अपने चरित्र-बल के द्वारा शिक्षा दी है। जब हम ऐसे चरित्र का निर्माण करते हैं, तभी हम दूसरों के कल्याण करने के अधिकारी बनते हैं। एक भिखारी दूसरे भिखारी की क्या सहायता कर सकता है? कुछ देने के पहले तुम्हारे पास कुछ होना चाहिए, तभी तुम दूसरों की सहायता कर सकते हो।

सब भय, चिन्ताओं से मुक्त होओ और धीरतापूर्वक कार्य करो। ईश्वर अपनी सन्तानों का ध्यान रखते हैं। 'हमें केवल करना और मरना है।' जो हितकर, बलप्रद, प्रेरणाप्रद और पावनप्रद है, उसे करो और शान्ति से मृत्यु को प्राप्त होओ। बड़ी-बड़ी बातों से कोई लाभ नहीं होता। हो सकता है, यह संसार तुम्हें न पहचाने, तुम्हें कोई श्रेय नहीं दे, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। तुम्हारा चरित्र ही तुम्हे सुख और आनन्द प्रदान करेगा।

भगवान के मन में हमारे लिए क्या है, यह केवल वे ही जानते हैं। यदि हम उन पर विश्वास करें, तो वे सभी परिस्थितियों में हमें दृढ़ रहने की शक्ति देंगे। तब शुभ-अशुभ, सुख-दुख, मान-अपमान – कुछ भी हमें विचलित नहीं कर सकेंगे। वे हमें स्वर्ग में रखें या नरक में, इससे हम विचलित नहीं होंगे। जो मुक्त है, जिसने स्वयं पर विजय प्राप्त कर ली है, वह नरक में भी समान रहेगा। इसलिए बाधाएँ आने पर

हमें अधीर नहीं होना है। हमें केवल निष्ठापूर्वक प्रार्थना करनी है और उतना ही हमारा अधिकार है। हमें केवल नि:स्वार्थ, पवित्र जीवन जीने का और ईश्वर का नाम लेने का अधिकार है, किन्तु उसके फल का अधिकार नहीं है।

संसार और ईश्वर दोनों भिन्न वस्तुएँ हैं। इसलिए ईश्वर की लीला को संसार के दृष्टिकोण से आँकना नहीं चाहिए। हम अच्छी तरह जानते हैं कि सन्तों और महापुरुषों को इस संसार से कभी कोई न्याय नहीं मिला। केवल कुछ ही लोग उन्हें समझ सके थे और वे वही लोग थे, जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया था और उससे प्रताड़ित हुए थे। राम और काम दोनों एक साथ नहीं हो सकते। यह असम्भव है। यदि हम ईश्वर की भक्ति करना चाहते हैं, तो हमें सासांरिक सुख-सुविधाएँ, नाम-यश, स्तुति का त्याग करना होगा। जिसे ईश्वर-साक्षात्कार करना है, उसके लिए ये सब विष के समान हैं। ''हे तात, यदि तुम मुक्ति पाना चाहते हो, तो विषयों को विष के समान त्याग दो। क्षमा, सरलता, दया, सन्तोष तथा सत्य का अमृत की तरह सेवन करो।'' (अष्टावक्र गीता, १.२) संन्यासी का जीवन अत्यन्त कठिन है। संन्यासी के लिए विषयी व्यक्ति को देखना भी अनिष्टकर है। हम ऐसा सोच सकते हैं कि हम सांसारिक परिवेश का सामना करने में समर्थ हैं, किन्तु धीरे-धीरे हमारे जाने बिना यह संसार हमारे मन-प्राण में घुस जाता है और हमारा पूरा जीवन नष्ट कर देता है। हमारी इन्द्रियाँ उन चोरों के समान हैं जो सदैव हमारे दुर्बल क्षणों की प्रतीक्षा में रहती हैं। इसलिए आध्यात्मिक स्तर पर सदैव सजग रहो, तब तुम्हें इन इन्द्रिय रूपी चोरों से कोई भय नहीं होगा। तुम्हारे सजग रहने पर वे चोरी नहीं कर सकेंगे।

जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं, तब तक हमारा सम्पूर्ण जीवन अपने इष्ट-देवता की पवित्र और नि:स्वार्थ प्रेम से सेवा करने का संघर्ष होना चाहिए। दूसरे लोग क्या कहते हैं, इसकी बिल्कुल भी परवाह मत करो। हमारे भीतर अनन्त शक्ति है। हम जगन्माता की सन्तान हैं और यही हमारी शक्ति है। हमें साहसपूर्वक जीना है, साहसपूर्वक कर्म करना है और साहसपूर्वक मर जाना है। भय ही दुर्बलता है, भय ही पाप है। हमारा उससे कोई भी सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।

सब अपवित्र भावों को उखाड़ फेंक दो और कहो, 'मैं पवित्र हूँ, मैं मुक्त हूँ! पाप, मृत्यु और भय मुझमें नहीं है। शिवोऽहम्! शिवोऽहम्! मैं ईश्वर की सन्तान हूँ, मैं अमर हूँ। अविनाशी ईश्वर और उनकी अविनाशी सन्तान में कुछ भी भेद नहीं होता । दोनों का स्वरूप एक ही है।' बल, बल, बल की आवश्यकता है। दुर्बल लोग मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए बलवान होओ और सब दुर्बलताओं को उखाड़ फेंक दो। दिन-रात यह कहते रहो, इसका चिन्तन करो, ''मैं पवित्र हूँ, मैं आनन्दमय हूँ, मैं मुक्त हूँ।''

जो इस ब्रह्माण्ड के नित्य परमेश्वर हैं, जो जगत्-कल्याण के लिए विभिन्न रूप धारण करते हैं, वे हमें शक्तिशाली, दृढ़, पवित्र और निर्भय बनाएँ और हम केवल उन्हीं के शरणागत हों। ❍❍❍

पृष्ठ ४१ का शेष भाग

कविता 'आँसू की पहचान हुई' हमारे उपरोक्त कथन के समर्थन में प्रमाण हेतु प्रस्तुत है –

बूँदों को धरती पर आकर सबसे पहले
अणु के प्यासे अरमानों की पहचान हुई।
मानव को दुनिया में आकर सबसे पहले
अपने जीवन में आँसू की पहचान हुई।

इसी लेखक की इस दिशा में अन्य काव्य-पंक्तियाँ हैं –

हे राम तेरी माया, कहीं धूप कहीं छाया।
अणुओं से बनी काया, परमाणु तेरा जाया।
शक्ति का सम्पूर्ण साया, मानव नहीं है लाया।
विघटित नाभि कराया, सूरज तूने बनाया।

अन्तर्प्रज्ञा, संवेदनशीलता और अभिव्यंजना कवि के आन्तरिक अभिन्न अंग हैं। अपनी अभिव्यंजना शक्ति के द्वारा कवियों ने पार्थिव अणु-परमाणुओं को शाश्वत बिम्ब का प्रतीक बनाने में सफलता अर्जित कर ली है, जिसके आधार पर कवि की अन्तर्प्रज्ञा और संवेदनशीलता को उसके शब्दों के चमत्कार और संगीत के माध्यम से सुना जा सकता है।

आज का समाज हाइटैक समाज है, अर्थात् उन्नत प्रविधिसम्पन्न समाज। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' रचित काव्य ग्रंथ 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठम सर्ग में आज का समाज निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतिबिम्बित हो रहा है –

आज की दुनिया विचित्र नवीन,
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन।
है बंधे नर के करों में वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढ़ता-उतरता है पवन का ताप।
है नहीं बाकी कहीं व्यवधान
लाँघ सकता नर, सरित, गिरि, सिन्धु एक समान।

(क्रमशः)

भगिनी निवेदिता की १५०वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली ने २८ अक्टूबर, २०१७ को सार्वजनिक सभा का आयोजन किया, जिसकी अध्यक्षता भारत के सम्माननीय राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविन्द जी ने की। रामकृष्ण संघ के सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने आशीर्वचन दिये। सभा में लगभग ७०० लोग उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन, जमशेदपुर द्वारा संचालित विद्यालयीय परिसर में २९ अक्टूबर, २०१७ को झारखण्ड के मुख्यमन्त्री सम्माननीय श्री रघुवरदास जी ने भगिनी निवेदिता की मूर्ति का अनावरण किया। आश्रम ने निबन्ध प्रतियोगिता भी आयोजित की, जिसमें कई विद्यालयों के १०७५ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा में २८ अक्टूबर, २०१७ को सेमीनार हुआ, जिसमें १५० भक्त उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन, गोहाटी ने २८ अक्टूबर, २०१७ को सभा की, जिसमें २०० शिक्षक और छात्र उपस्थित थे। आश्रम की कालीपूजा में स्वामी सर्वगानन्द, स्वामी आत्मविदानन्द, स्वामी सुमनसानन्द जी ने भजन गाये।

रामकृष्ण मिशन, हैदराबाद में २६ अक्टूबर, २०१७ को खम्मम् जिले के सतुपल्ली शहर में युवा शिविर आयोजित हुआ, जिसमें कालेजों की २००० छात्राएँ उपस्थित थीं।

रामकृष्ण मिशन, जम्मू में २८ अक्टूबर, २०१७ के व्याख्यान में लगभग १५० लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, काकुड़गाछी ने अक्टूबर में चार व्याख्यान आयोजित किये, जिसमें ९६० भक्त उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन, तमलुक की २८ अक्टूबर की सभा में ६०० भक्त उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन, शिलाँग की दुर्गापूजा में मेघालय के राज्यपाल सम्माननीय श्री बनवारीलाल पुरोहित और कुछ मेघालय के कैबिनेट मन्त्रियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, पटना की दुर्गापूजा में २८ अक्टूबर, २०१७ को महाष्टमी के दिन बिहार के मुख्यमन्त्री सम्माननीय श्री नीतीश कुमार जी ने भाग लिया।

साधु सम्मेलन का आयोजन

अद्वैत आश्रम, मायावती में २२ अक्टूबर को नव निर्मित 'प्रबुद्ध भारत' सम्पादकीय भवन और पुस्तकालय का उद्घाटन किया गया और त्रिदिवसीय साधु-सम्मेलन भी आयोजित हुआ, जिसमें रामकृष्ण मिशन के विभिन्न आश्रमों के ३१ साधुओं ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, झाड़ग्राम में ११ अक्टूबर, २०१७ को पश्चिम बंगाल की सम्माननीया मुख्यमन्त्री ममता बनर्जी ने भवन का शिलान्यास किया।

असम और अरुणाचल भावप्रचार परिषद में व्याख्यान

रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद अरुणाचल प्रदेश और असम के विभिन्न केन्द्रों में दक्षिण अफ्रिका डरबन के मिनिस्टर इन्चार्ज स्वामी सुमनसानन्द जी, रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी और रामकृष्ण मिशन, ईटानगर के स्वामी आत्मगतानन्द जी के १६ अक्टूबर, २०१७ को अरुणाचल प्रदेश के श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम, लक्खीमपुर, विवेकानन्द स्टडी सर्किल, नाहरलागुन, १७ अक्टूबर को असम प्रदेश के रामकृष्ण सारदा आश्रम, रांगापारा में, श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम, पद्मपुकुरी, तेजपुर में, १८ अक्टूबर को रामकृष्ण सेवाश्रम जागी रोड में, श्रीरामकृष्ण सेवा समिति, नवागाँव, काली मन्दिर में, १९ अक्टूबर को श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम, ग्वालपाड़ा और श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम, यमुनामुख में व्याख्यान हुए। OOO